नेहरू बाल पुस्तकालय

युग-युग की कहानियां

शांता रंगाचारी

चित्रांकन

पी. खेमराज

अनुवाद

मोहिनी राव
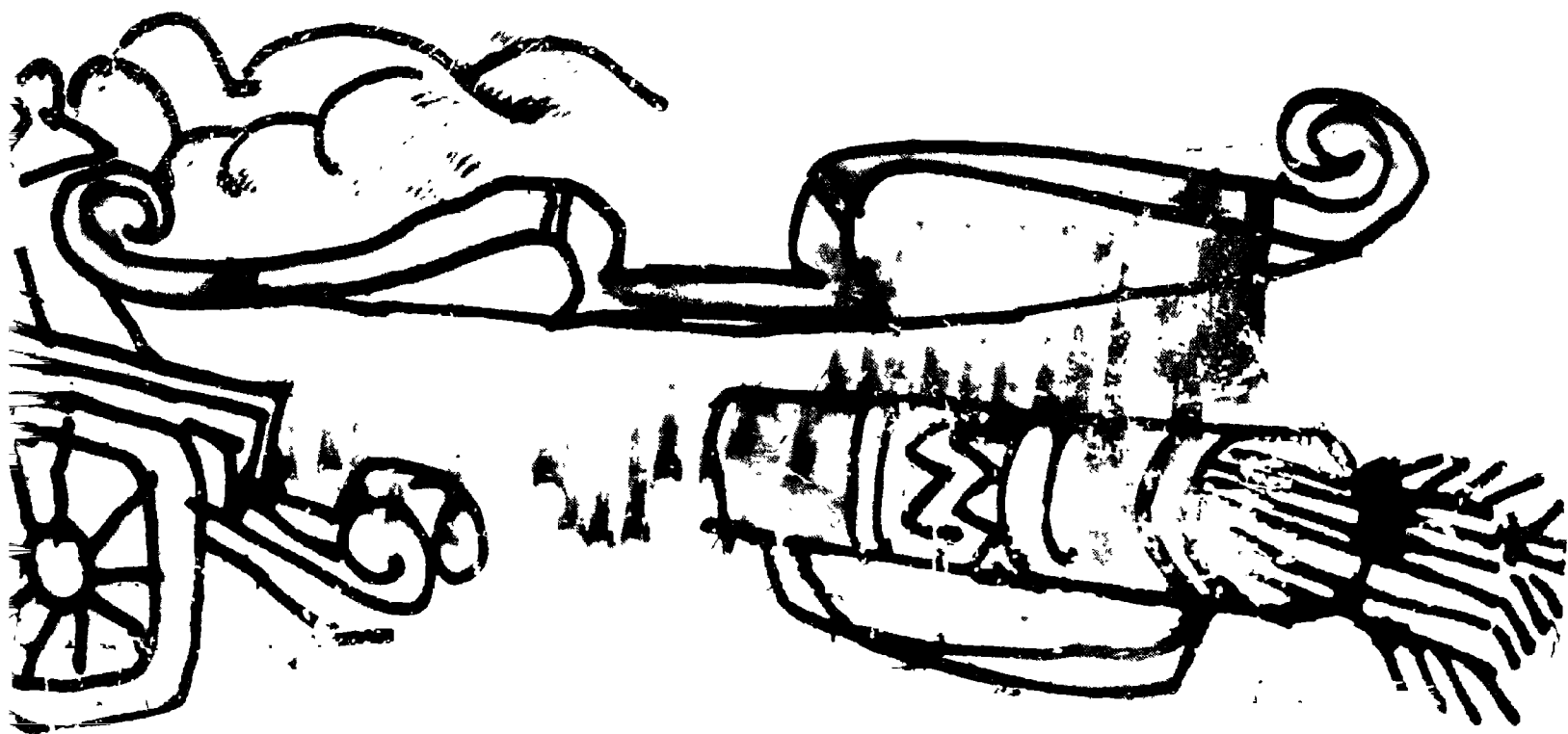
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

मृत्यु से संवाद

राजकुमारी सावित्री पिता के सामने खड़ी थी—सुंदर, सुकुमारी, लेकिन दृढ़-संकल्प। उसके चेहरे पर हठ था। उसके पिता राजा अश्वपति उसके हठीले स्वभाव को खूब जानते थे, लेकिन उसके सामने अपने को विवश पाते थे।

सावित्री ने पिता को याद दिलाया, "आपने कहा था कि मैं अपना पति स्वयं चुन सकती हूं। कहा था न? याद है न आपको, पिताजी? और अब आप अपने वचन से पीछे हट रहे हैं।"

पिता-पुत्री एक दूसरे से कटु वचन न कह बैठें, इस डर से नारद मुनि बात काटकर बीच ही में बोल उठे, "पुत्री, तुम्हारे पिता अपना वचन नहीं तोड़ रहे हैं। वह मुझसे सत्यवान के बारे में ही पूछ रहे थे जिससे तुम विवाह करना चाहती हो। मैं उनसे बात कर रहा था तो उन्होंने कहा सावित्री को बुलवा लें। वे चाहते थे कि मैं जो कुछ कहूं, वह तुम स्वयं अपने कानों से सुनो।"

"और आप क्या कह रहे थे?" सावित्री ने पूछा। सावित्री जानती थी कि

नारद के साथ बहुत सोच-समझ कर बात करनी चाहिए। सावित्री की बुद्धि बहुत तेज थी, लेकिन नारद उससे भी तेज थे। वह देवताओं और मनुष्यों दोनों के ही मित्र, सलाहकार और दूत थे। वह जो कुछ भी करते थे वह सब के भले के लिए ही होता। अंतिम परिणाम चाहे जितना सुखद हो, उनके काम प्रायः लोगों को अप्रिय लगते थे। नारद इतने चतुर थे कि कभी-कभी, बड़े-बड़े बुद्धिमान लोग भी हार जाते थे। नारद के लिए सावित्री के मन में बड़ा आदर था।

नारद ने कहा, "सत्यवान जिससे तुम प्रेम करती हो, बड़े प्रतिष्ठित वंश का राजकुमार है और बहुत योग्य है। उसके नाम से ही उसके सच्चरित्र का पता चलता है। सत्यवान—अर्थात् जो केवल सत्य बोलता है। वह बुद्धिमान है, साहसी है, और पितृभक्त है। उसके अंधे वृद्ध पिता को उनके एक धोखेबाज संबंधी ने षड्यंत्र रचकर गद्दी से उतरवा दिया था। उनका जन्म तो हुआ था राजसिंहासन पर बैठने के लिए, लेकिन अब जंगल में रहते हैं और लकड़हारे का काम करते हैं बेचारे।"

"मैं सब कुछ जानती हूं।"

"तुम और भी बहुत कुछ जानती हो शायद," उसके मन की थाह पाने की कोशिश करते हुए नारद ने कहा।

"यह तो इस पर निर्भर करता है कि आप और क्या जानते हैं," सावित्री ने पैंतरा बदला

नारद ने मुस्कराकर मन ही मन सोचा, "यह जरा-सी लड़की मुझे बनाने की कोशिश कर रही है!"

उन्होंने कहा, "मुझे एक और बात मालूम है जो शायद तुम्हें नहीं मालूम। वही बात मैं अभी तुम्हारे पिता को बता रहा था।"

"यही बात न कि सत्यवान की जन्मपत्री में लिखा है कि आज से ठीक एक वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो जायेगी?"

इस साहस से राजकुमारी ने ये शब्द कहे कि दोनों श्रोता दंग रह गये!

उसके पिता ने आवेश में आकर कहा, "फिर भी तुम उस युवक से विवाह करना चाहती हो?" उनकी आवाज कांप रही थी।

नारद ने सोचते हुए सावित्री की ओर देखा और पूछा, "तुमने कैसे यह मालूम किया, सावित्री? क्या तुम सत्यवान के मां-बाप से मिली थी?"

"हां," सावित्री ने उत्तर दिया। "उनकी मां बहुत ही धर्मपरायणा हैं। उन्होंने ही मुझे बताया। सत्यवान के जन्म के बाद जिन पंडितों ने उनकी जन्मपत्री बनायी थी, उन्होंने उनके माता-पिता को सावधान कर दिया था। सत्यवान इस बात को नहीं जानते, लेकिन उनके मां-बाप जानते हैं। इतने वर्षों तक उन्होंने इस रहस्य को छिपाये रखा और चिंता के भार को चुपचाप सहते रहे।"

नारद ने कहा, "एक बात बताओ, सावित्री। तुम समझती हो कि सत्यवान से विवाह करने पर तुम्हारा भविष्य कैसा होगा?"

"जी हां," सावित्री ने कहा।

"तुम्हें भय नहीं लगता?"

"दुखी अवश्य हूं," सावित्री ने गंभीरता से कहा, "लेकिन भय नहीं लगता। मैं यह नहीं मानती कि ब्राह्मण-पंडितों की गणना के अनुसार ग्रहों की स्थिति द्वारा जन्म और मृत्यु का निर्णय होता है। हम मनुष्य एक-दूसरे के जीवन को प्रभावित करते हैं। यदि मैं सत्यवान से विवाह करूंगी तो मेरे भाग्य का प्रभाव उसके जीवन पर पड़ेगा और कौन जाने क्या हो। हो सकता है कि होनी को रोका भी जा सके।"

सावित्री की बात सुनकर नारद मुनि ने उठते हुए कहा, "इस विवाह में अब रुकावट न डालो, अश्वपति। तिलक की तैयारी करो। सावित्री उन्हें प्रणाम करने आयी तो उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखकर, गद्गद्-कंठ से कहा, "राजकुमारी, मैं केवल एक ब्रह्मचारी हूं, लेकिन मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। भगवान से

प्राथना करूंगा कि तुम्हारा मंगल करें। मेरी कामना है बेटी, कि तुम्हारा साहस सदा सत्यवान की रक्षा करे।''

राजकुमारी उठकर अंदर जाने लगी तो अश्वपति उसकी ओर अपलक देखते रहे और ठंडी सांस भर कर बोले, ''सावित्री को लड़का होना चाहिए था। स्त्रियों का इतना कुशाग्रबुद्धि होना अच्छा नहीं। कहीं इसकी प्रखर बुद्धि के कारण इसका अमंगल न हो।''

नारद ने स्नेहपूर्ण तिरस्कार से कहा, ''इन मामलों में इतने पुराने विचार नहीं होने चाहिए, अश्वपति। जो भी हो, सावित्री की प्रखर बुद्धि लकड़हारे पति, अंधे ससुर और बेहद धार्मिक सास के साथ वन में रहने में उसकी अवश्य सहायता करेगी।''

लेकिन नारद की शंका गलत निकली। सावित्री-सत्यवान का विवाहित जीवन बहुत सुखी था। सावित्री को तो लगता कि जितना सुख वन में है उतना महल में नहीं।

बहुत सवेरे जब पक्षी चहचहाने लगते और गऊएं रंभा-रंभा कर अपने बछड़ों को बुलाने लगतीं, सावित्री की आंख खुल जाती। सास-ससुर उसको इतना लाड़-प्यार करते थे कि वह माता-पिता के वियोग को भी सह गयी। सास-ससुर ने ही उसे जप-तप का संयम-नियम समझाया। इस प्रकार सुख और स्वाधीनता के वातावरण में दिन निकलते गये और सावित्री किशोरी से युवती हो गयी।

सत्यवान की मृत्यु का भय हर समय उनके सुखी जीवन पर छाया रहता था। लेकिन सावित्री और उसके सास-ससुर के व्यवहार से यह जरा भी पता न चलता कि यह चिंता उन्हें घुन की तरह खाये जा रही है।

आखिर काल-दिवस आ पहुंचा। रोज की तरह सवेरा हुआ। पेड़ों पर चिड़ियां चहचहायीं, गऊएं रंभा-रंभा कर अपने बछड़ों को बुलाने लगीं। सत्यवान के माता-पिता चिंतित, उदास चेहरों से अपना-अपना काम-काज करने लगे। रह-रह कर वे प्रेम से इतने व्याकुल होकर पुत्र की ओर देखते कि सावित्री से सहा न जाता और वह अपना मुंह फेर लेती। सावित्री भी यंत्र के समान चुपचाप अपना काम कर रही थी। उसमें जैसे कुछ सोचने की शक्ति ही नहीं थी।

सत्यवान लकड़ी काटने के लिए जंगल जाने को तैयार हुआ तो सावित्री भी उठी।

"मैं आज आपके साथ चलूंगी। चलूं?" उसने पूछा।

"क्यों?" सत्यवान ने कहा, "आजकल धूप बहुत तेज होती है। और फिर तुम्हारी आदत है इधर-उधर घूमने निकल जाती हो और खो जाती हो।"

सावित्री ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुए कहा, "आज मैं कहीं नहीं जाऊंगी। बस, बैठी-बैठी आपको देखती रहूंगी।"

अचानक सत्यवान् की मां बोल उठीं, "उसको अपने साथ ले क्यों नहीं जाते, बेटा?"

सत्यवान ने हंसकर शरारत भरी आंखों से पूछा, "क्यों मां, आज सवेरे-सवेरे अपनी बहू से छुटकारा पाना चाहती हो?"

मां ने कहा, "नहीं, मैं अपने बेटे का समझाने की कोशिश कर रही हूं कि कभी-कभी पत्नी को दुलार करना चाहिए। इस बेचारी के लिए दिल बहलाने को यहां क्या रखा है।"

"तो मैं इसको दुलार करूं, मां? मैं तो इसे हीरे और लाल का हार देना चाहता हूं। उसकी जगह जंगल की सैर... रहने भी दो, इससे क्या दिल बहलेगा?"

सत्यवान की बात सुनकर सावित्री का दिल डूबने लगा, लेकिन अपनी व्यथा को छिपाकर, हंसकर उसने कहा, "ओह! हीरे-लाल का हार! खैर... आज तो जंगल की सैर करा दीजिए। लेकिन हार किसी न किसी दिन लेकर रहूंगी, छोडूंगी नहीं। याद रखिएगा। आपने वचन दिया है।"

हंसते-बोलते, एक-दूसरे से बहुमूल्य उपहारों का वायदा करते, लापरवाह प्रसन्न बच्चों की तरह दोनों वन की ओर चले। जब सत्यवान ने माता-पिता को प्रणाम किया तो उनकी आंखें उसके चेहरे से हट नहीं पायीं। वे उसके शरीर पर हाथ फेरते रह गये। सावित्री ने ऐसा बहाना किया मानो उसने कुछ देखा ही न हो। उसको डर था कि कहीं आंखों से आंसू न बहने लगें। वह बार-बार अपने को समझाती रही, "आज मुझे अपने सारे साहस और संयम की जरूरत है। अपने मित्रों, ब्राह्मणों और नारद मुनि के आशीर्वाद की जरूरत है। अब मेरा भाग्य मेरे ही हाथों में है।"

जंगल में पहुंच कर सत्यवान ने अच्छी तरह देख-भाल कर काटने के लिए एक पेड़ चुना, और उसके तने पर कुल्हाड़ी चलाने लगा। सावित्री चारों तरफ

देखती रही कि कहीं से कोई सांप या बनैला पशु न आ जाए। वह सोच रही थी कि सांप या जंगली पशु के रूप में ही मृत्यु उसके पति पर वार करेगी। कुल्हाड़ी चलाते-चलाते अचानक सत्यवान ने अपना सिर थाम लिया और लड़खड़ाता हुआ पत्नी के निकट आया।

"ओह कितनी भयंकर पीड़ा हो रही है सिर में," इतना कहना था कि गिरकर वह मूर्च्छित हो गया।

सावित्री ने तुरंत पति का सिर अपनी गोद में रख लिया और इधर-इधर देखने लगी कि कहीं कोई है जिसे सहायता के लिए पुकारा जा सके? सत्यवान के मूर्च्छित होकर गिरने से सावित्री स्तब्ध होकर ऐसे बैठी रही मानों पत्थर की मूर्ति हो।
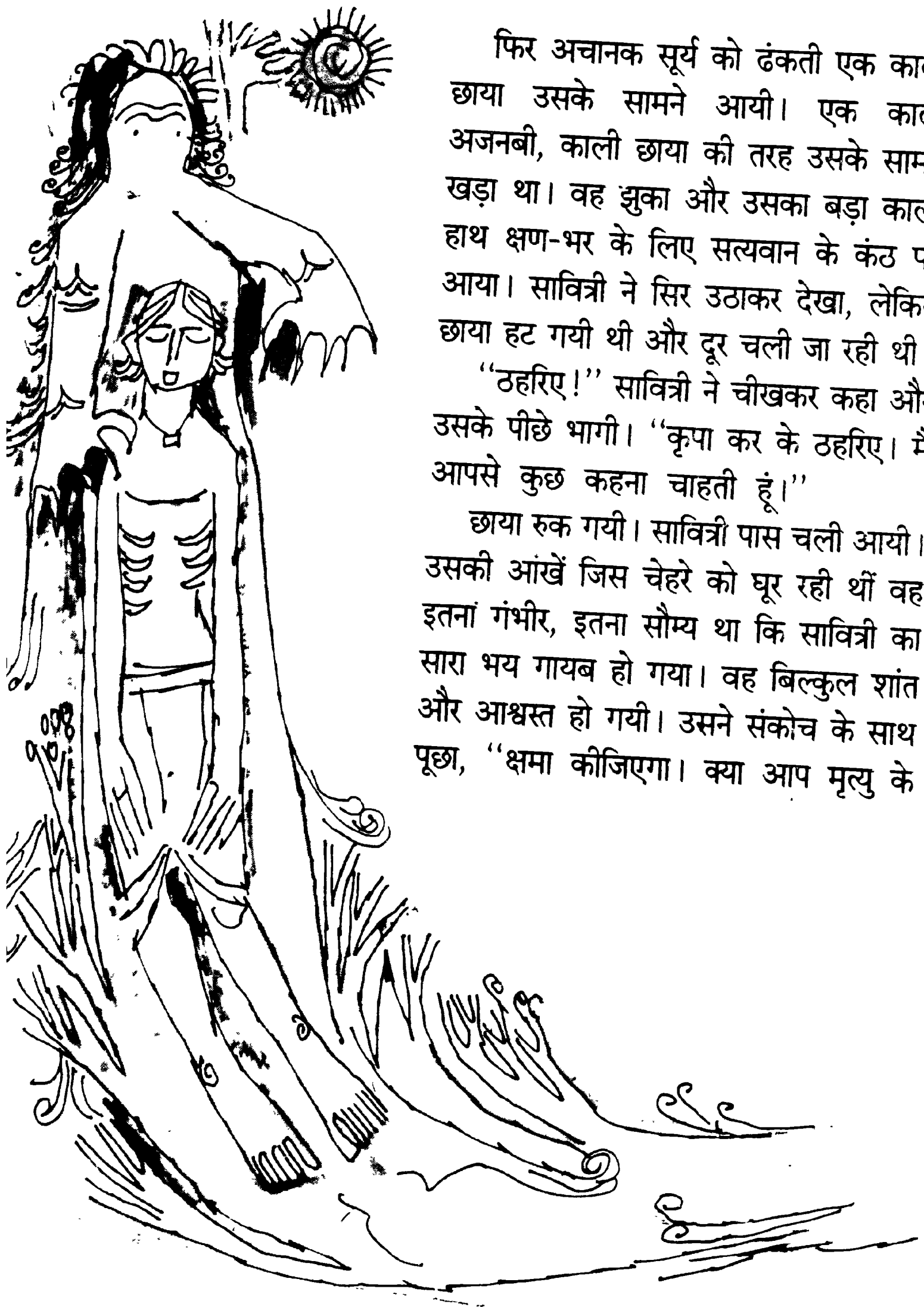
फिर अचानक सूर्य को ढंकती एक काली छाया उसके सामने आयी। एक काला अजनबी, काली छाया की तरह उसके सामने खड़ा था। वह झुका और उसका बड़ा काला हाथ क्षण-भर के लिए सत्यवान के कंठ पर आया। सावित्री ने सिर उठाकर देखा, लेकिन छाया हट गयी थी और दूर चली जा रही थी।

''ठहरिए!'' सावित्री ने चीखकर कहा और उसके पीछे भागी। ''कृपा कर के ठहरिए। मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूं।''

छाया रुक गयी। सावित्री पास चली आयी। उसकी आंखें जिस चेहरे को घूर रही थीं वह इतना गंभीर, इतना सौम्य था कि सावित्री का सारा भय गायब हो गया। वह बिल्कुल शांत और आश्वस्त हो गयी। उसने संकोच के साथ पूछा, ''क्षमा कीजिएगा। क्या आप मृत्यु के

देवता हैं? मैंने आपके बारे में बहुत कुछ सुना हूं," सावित्री बोलती रही, "लेकिन अभी बहुत कुछ जानना चाहती हूं। एक बात पूछ सकती हूं? क्या आप हर एक के प्राणों को ले जाने स्वयं आते हैं?"

मृत्यु के देवता ने आगे चलते-चलते कहा, "नहीं, मैं खास-खास लोगों के लिए ही आता हूं।"

"यदि सत्यवान खास लोगों में थे तो इतनी कम अवस्था में उनका जीवन क्यों ले लिया गया? और फिर उन्होंने कोई अपराध भी तो नहीं किया था।"

"मृत्यु दंड नहीं है," यमराज बोले।

सावित्री जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाने लगी ताकि उस अजनबी के साथ कदम मिलाकर चल सके।

"मृत्यु अगर दंड नहीं है," उसने पूछा, "तो किस जीवन का कब अंत होगा, इसका फैसला कौन करता है? किसी के जन्म के समय ही उसकी मृत्यु का फैसला कर लेना तो अन्याय है। और फिर इसमें कोई तर्क भी नहीं है।"

छाया ने रुककर कहा, "यह समझना आसान नहीं है। तुम वापस क्यों नहीं चली जाती, सावित्री? तुम मेरा पीछा क्यों कर रही हो?"

"मैं आपका पीछा नहीं कर रही हूं," सावित्री ने भोलेपन से कहा। "मैं तो अपने पति के पीछे-पीछे जा रही हूं।"

"लेकिन यह अब तुम्हारा पति नहीं है।

सावित्री ने धीरे से कहा, "लेकिन मैं तो सोचती हूं कि प्रेम जीवन और मृत्यु से परे की चीज है। हम कहते हैं कि किसी स्त्री और पुरुष का आपस में प्रेम हो जाना केवल एक दूसरे को पहचान लेना है। आप पहचान उसी को सकते हैं जिससे पहले परिचय रहा हो। मैंने तो सत्यवान को पहली बार देखते ही पहचान लिया था। हम लोग पहले से ही एक-दूसरे को जानते हैं। और ऐसा दोनों के पूर्व जन्म में ही हुआ होगा। अपने पूर्व जन्म में हम एक-दूसरे को जानते थे, इस कारण इस जन्म में हम एक-दूसरे को देखते ही पहचान गये। इसी कारण मैं सत्यवान को नहीं छोड़ सकती। हमारा जन्म-जन्म का साथ है। यदि आप इन्हें ले जायेंगे तो मुझे भी ले जाना पड़ेगा।"

मृत्यु के देवता यम कुछ हंसकर बोले, "तुम बहुत हठी हो। तुम्हारा तर्क सुनकर मुझको हंसी आती है। तुम्हारी कोई इच्छा है? सत्यवान के जीवन को छोड़कर कुछ भी मांगो। मैं दूंगा।"

सावित्री सोचने लगी।

सोचकर उसने कहा, "अच्छी बात है। आप तो जानते हैं कि मेरे ससुर को धोखा देकर उनकी गद्दी छीन ली गयी थी। मैं सोचती हूं कि इस अन्याय का प्रतिकार होना चाहिए। मुझे आशा है कि आप मुझसे सहमत होंगे।"

"तथास्तु," यम ने कहा, और जल्दी-जल्दी चलने लगे। कुछ दूर जाने के बाद उन्होंने मुड़कर देखा कि सावित्री अब भी उनके पीछे आ रही है। उसके तलुए कांटों और कंकडों से छिलकर लहूलुहान हो गये थे।

मुस्कराकर उसने कहा, "आप बहुत तेज चलते हैं।"

यम ने उसकी ओर कठोर दृष्टि से देखकर पूछा, "तुम चाहती क्या हो, सावित्री। यदि तुम अपने पति का जीवन चाहती हो तो तुरंत इसका विचार छोड़ दो क्योंकि यह संभव नहीं है। यम न तो अपना वचन तोड़ता है और न किसी का जीवन लौटाता है। समझी?"

"ओह, यह बात है?" सावित्री ने बड़ी सोच में सिर हिला कर कहा। "बड़ी दिलचस्प बात है। लेकिन तब तो आपको पक्का विश्वास होगा कि आप जो कुछ करते हैं, ठीक करते हैं। है न?"

"इसमें ठीक और गलत का कोई प्रश्न नहीं।"

"अच्छा," सावित्री ने आश्चर्य से कहा, "कितनी अजीब बात है। बचपन से ही कूट-कूट कर मेरे दिमाग में यह बात भरी गयी है कि हमेशा वही काम करना चाहिए जो ठीक हो। गलत काम नहीं करना चाहिए। लेकिन शायद ठीक या गलत यह सब केवल हम मनुष्यों के लिए है, देवताओं के लिए नहीं।"

"लेकिन मृत्यु की बात अलग है।"

"कैसे? मुझको तो यही ठीक लगता है कि जो बात जीवन पर लागू है वही मृत्यु पर भी लागू होनी चाहिए।"

"तुम हर बात को इस तरह तोड़-मरोड़ देती हो कि वह तर्कपूर्ण लगने लगती है।"

"क्षमा चाहती हूं," सावित्री ने बड़े विनय से कहा। "मैं अपनी बात को दूसरी तरह कहूंगी। यदि सारा जीवन हम ठीक काम करने का प्रयत्न करते रहते हैं तो यह उचित ही है कि...।"

"ठहरो," यम ने कहा। यदि मैं तुम्हें एक वरदान और दूं तो मेरा पीछा करना छोड़ दोगी?"

सावित्री ने बड़े हर्ष से ताली बजाकर कहा, "तो क्या आप मुझको एक और

वरदान देंगे? कितने उदार और दयावान हैं आप!"

"लेकिन याद रखना। सत्यवान का जीवन मत मांगना।"

"नहीं, नहीं," सावित्री ने कहा। "जरा सोचने दीजिए। मैं अपने पहले वरदान में ही कुछ और मांगना चाहती थी।" भौंहें सिकोड़ कर वह कुछ सोचने लगी। फिर जैसे अचानक बात याद आ गयी हो, उसके कहा, "हां, अपने ससुर के लिए कुछ मांगना चाहती थी जिनका राजपाट आपने कृपा कर के वापस दिलवा दिया। वह अंधे हैं। एक अंधा आदमी राजपाट लेकर क्या करेगा? और प्रजा के लिए अंधा राजा किस काम का भला?"

यम ने मुस्कराकर कहा, "तुम्हारे ससुर की आंखें बिल्कुल ठीक हो जायेंगी।"

यह कहकर वह चलने लगे तो सावित्री ने फिर कहा, "मुझे बड़ी खुशी है कि मुझे अपने ससुर की याद हो आयी। अगर मुझे उनकी आंखों की बात याद न आ जाती तो जानते हैं उत्तेजना में मैं क्या मांग बैठती?"

"क्या?"

"अपने पिता और अपने ससुर के राज्यों के लिए वैभव और सुख। बात यह है कि अब दोनों राज्यों की उत्तराधिकारी मैं ही हूं। अब सोचती हूं कि अच्छा ही हुआ कि मैंने आपसे यह वरदान नहीं मांगा। इन राज्यों को भला वैभव और सुख क्यों दिया जाए? यह तो राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को समृद्ध और सुखी बनाये। है न?"

"हां।"

"राजा की जिम्मेदारियां बहुत बड़ी हैं", सावित्री ने गंभीरता से सिर हिलाते हुए कहा। "महल में रहना, दरबार लगाना, कवियों और गायकों को सम्मानित करना, और कर वसूल करने के लिए कर्मचारियों को राज्य-भर में भेजना, इतना ही थोड़ा होता है राजा का काम? राजा को यह भी देखना होता है कि कानून का पालन उचित ढंग से हो, और उसके कर्मचारी प्रजा को न सताएं। उसको

पड़ोसियों के साथ शांति बनाये रखनी चाहिए, और यह देखना चाहिए कि उसके राज्य में कोई ऐसा तो नहीं है जिसके पास भोजन, कपड़ा या रहने की जगह नहीं है। इसमें भी जरूरी यह है कि लोगों को बोलने की आजादी हो, और वे राज्य-व्यवस्था की आलोचना निर्भय होकर कर सकें जिससे कि राजा स्वेच्छाचारी न बन जाये।''

इस बुद्धिमती राजकुमारी की बातें सुनकर यम मन ही मन उसकी प्रशंसा करते हुए बोले, ''बिल्कुल ठीक कह रही हो तुम। न्याय और स्वाधीनता की परंपरा पुस्तकों में लिखे कानूनों से कहीं ज्यादा बड़ी है।''

सावित्री ने कहा, ''और इसके लिए यह आवश्यक है कि राजाओं के वंश बिना किसी विघ्न-बाधा के चलते जायें, उत्तराधिकार का सिलसिला कहीं न टूटे। है न?''

''अवश्य,'' यम ने कहा। ''अगर उत्तराधिकार के सिलसिले में गड़बड़ी हुई तो अराजकता फैलेगी, संबंधियों में आपस में युद्ध होगा।''

सावित्री ने अचानक मौन साध लिया। उसके चेहरे पर निराशा और उदासी छा गयी, उसके कंधे झुक गये और उसकी सुंदर आंखों से आंसू टपक पड़े।

यम ने आश्चर्य से पूछा, ''क्या हुआ, सावित्री?''

''आप इतने बुद्धिमान हैं, सर्वज्ञ हैं,'' सावित्री ने ठंडी सांस भर कर कहा। ''मुझे विश्वास है कि आपने मेरे मन की बात समझ ली होगी।''

यम भौंहें सिकोड़कर सोचने लगे। सावित्री क्या सोच रही है यह समझने की कोशिश करना वैसा ही था जैसे तूफान में हवा की दिशा का अनुमान लगाना।

सावित्री ने धीरे से कहा, ''मैं सोच रही थी कि मेरे बाद इन दोनों राज्यों का कोई शासक नहीं होगा। मेरे पिता और मेरे ससुर के वंशों का क्या होगा? मेरी मृत्यु के बाद कितनी अराजकता फैलेगी, संबंधियों में युद्ध होंगे—यही शब्द थे न आपके? सड़कों पर रक्त की नदियां बहेंगी, नगर उजाड़ हो जायेंगे, फसलों को
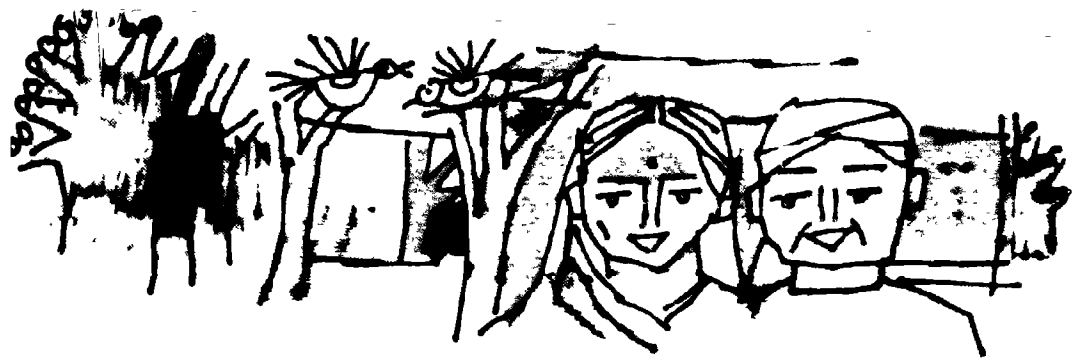
काटनेवाला कोई न होगा, घर-घर से स्त्रियों और बच्चों का रोना सुनायी देगा...।''

''ठहरो,'' यम ने उसको रोक कर कहा। ''ऐसा नहीं होने पायेगा। मैं तुमको वरदान देता हूं। तुम्हारे सौ पुत्र होंगे और वे दोनों वंशों को चलायेंगे।''

जैसे ही यम के मुख से यह शब्द निकले, सावित्री का सारा रूप ही मानों बदल गया। उसका चेहरा खुशी से चमकने लगा, झुके कंधे तन गये, ठंडी सांसें और आंसू मानों जादू से गायब हो गये। रानियों की-सी शान से सुंदर राजकुमारी यम के सामने सिर उठाये खड़ी थी।

उसने कहा, ''मुझे दुख है कि मेरे कारण आपको अपनी परंपरा तोड़नी पड़ेगी।''

''कौन-सी परंपरा?'' यम ने सतर्क होकर पूछा।

''यही कि यम कभी किसी का जीवन नहीं लौटाते। आपने मुझको सौ पुत्रों का वरदान दिया है न? यदि आप मेरे पति को ले गये तो मेरे पुत्र कैसे होंगे?

यम ने हार स्वीकार की। जब दोनों जल्दी-जल्दी जंगल में वापस जा रहे थे तो
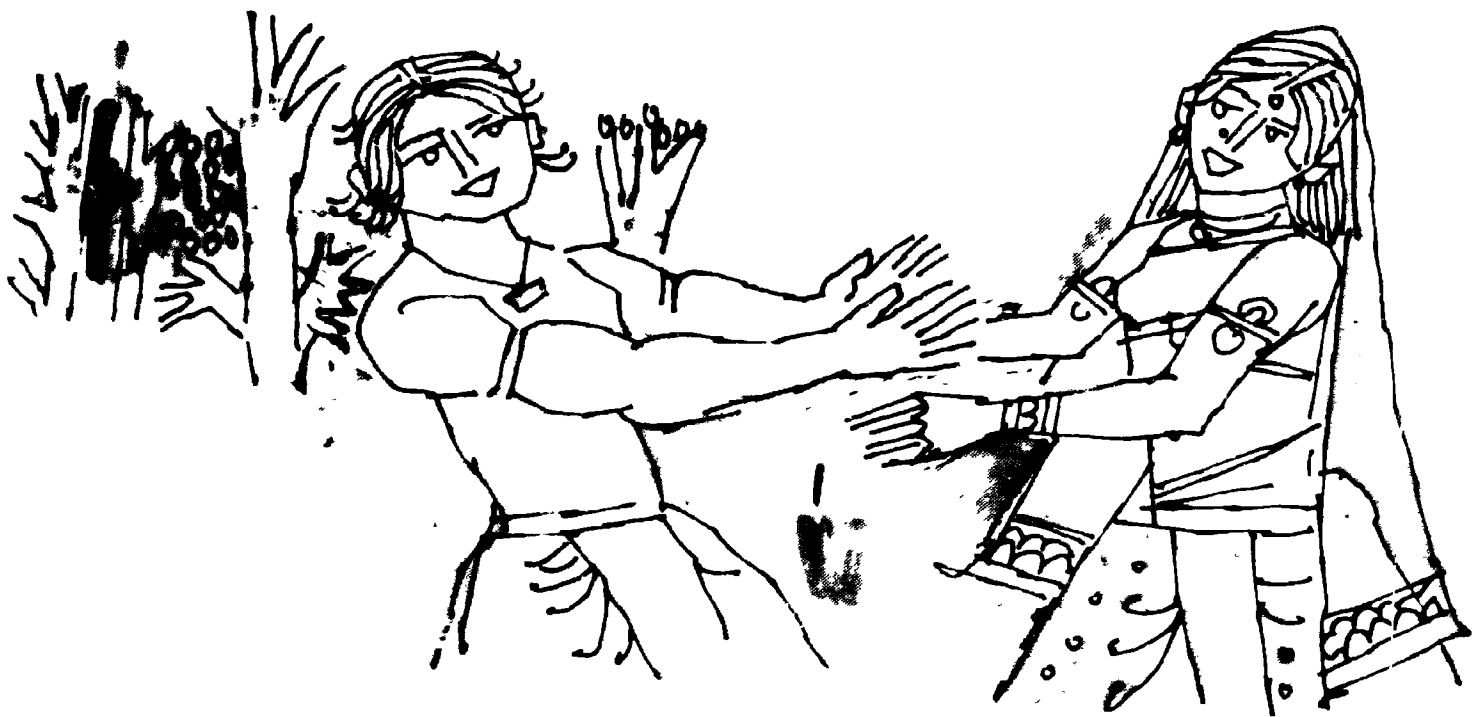
यम ने कहा, "नारद ने मुझसे कहा था कि मैं सत्यवान को लेने स्वयं जाऊं। तभी मुझे समझ जाना चाहिए था कि इसमें नारद की कोई चाल है!"

कहने की आवश्यकता नहीं कि यमराज ने जो-जो वरदान सावित्री को दिए थे, सब पूरे हुए। सत्यवान आंखें मलता हुआ उठ बैठा मानों लंबी नींद से जगा हो। उसने सावित्री को बताया कि उसने एक विचित्र सपना देखा कि वह किसी काले अजनबी के साथ किसी लंबी यात्रा पर जा रहा है। सत्यवान के पिता को आंखें भी मिल गयीं और खोया हुआ राजपाट भी। सावित्री को हीरे और लाल का कीमती हार भी मिला।

भाग्य ने पलटा खाया। चारों तरफ खुशियां मनायी जाने लगीं। खाने-पीने, नाच-गाने की धूम मच गयी। जब धूम-धड़ाका खत्म हुआ और उत्साह ठंडा पड़ा तो एक दिन अश्वपति ने सावित्री को अलग बुलाकर पूछा, "मुझे समझ नहीं आता बेटी, कि यमराज से टक्कर लेने का साहस कैसे हुआ तुमको?"

सावित्री ने मुस्कराकर कहा, "पिताजी, सत्यवान की माताजी से जब मैं मिली तो उन्होंने मुझे उनकी जन्मपत्री और पंडितों की भविष्यवाणी के बारे में बताया। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि उनमें जो सबसे विद्वान पंडित थे उन्होंने बताया था कि मृत्यु से अधिक शक्तिशाली वस्तु सत्यवान की मृत्यु को टाल सकेगी। इसी से मुझे आशा बंधी और साहस हुआ। मेरे पास मृत्यु से अधिक शक्तिशाली चीज थी पिताजी—मेरा प्रेम।

सात दिनों का पहरा

प्राचीन काल में राजा लोग केवल शौक के लिए ही शिकार नहीं करते थे। बनैले पशुओं को खत्म करना भी उनका उद्देश्य था ताकि वे वानप्रस्थियों को परेशान न करें। जब कभी कोई राजा शिकार पर जाता तो दरबारियों, सैनिकों और सेवकों का बड़ा दल भी उसके साथ होता।

महाभारत के वीर नायक अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित एक दिन एक हिरन का पीछा कर रहे थे। निशाना बांधकर तीर जो उन्होंने चलाया तो हिरन घायल हो गया, लेकिन मरा नहीं। शिकार का नियम है कि जानवर की जान ले लो, मगर उसे पंगु बना कर मत छोड़ दो। किसी जानवर को घायल और पीड़ा से छटपटाता छोड़ देना अधर्म माना जाता था और अब भी माना जाता है। जब हिरन घायल हो गया तो राजा उसको मारकर कष्ट से छुटकारा दिलाने के उद्देश्य से उसका पीछा करते-करते जंगल के बिल्कुल भीतर पहुंच गये। उनके साथी कहीं पीछे छूट गये थे। राजा थक गये थे। उनको बड़े जोरों से भूख और प्यास लग रही

थी। लेकिन उन्होंने संकल्प कर रखा था कि जब तक हिरन को पीड़ा से छुटकारा नहीं दिला देंगे, वापस नहीं लौटेंगे।

अचानक राजा ने देखा कि पेड़ों के बीच एक खाली स्थान है। वहां एक वृद्ध ब्राह्मण गऊओं को सानी-पानी दे रहे थे। राजा ने उनके पास जाकर पूछा, "ब्राह्मण देवता, मैं अभिमन्यु का पुत्र और इस राज्य का शासक हूं। मैं एक घायल हिरन की तलाश में हूं। वह इस ओर तो नहीं आया? आपने तो नहीं देखा?"

ब्राह्मण सन्यासी का नाम शमीक था। संयोग से वह उनके मौन रहने का दिन था। उन्होंने राजा के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। ब्राह्मण के उत्तर न देने पर राजा को पहले तो आश्चर्य हुआ, फिर उन्होंने सोचा कि शायद वृद्ध ब्राह्मण को सुनायी नहीं देता, और उन्होंने ऊंची आवाज में फिर अपना प्रश्न दोहराया। शमीक राजा की ओर देखते रहे लेकिन इस बार भी उत्तर नहीं दिया। राजा ने इतनी देर में यह तो जान लिया था कि सन्यासी बहरे नहीं हैं, क्योंकि इसी बीच एक गाय ने दूध दुहने की बाल्टी को लात मारी और उसकी आवाज सुनकर ब्राह्मण ने फुर्ती से बाल्टी को थाम लिया और उसको उलटने से बचा लिया।

अब तो राजा को बहुत क्रोध आया। उन्होंने समझा कि ब्राह्मण बहुत धृष्ट है। एक सन्यासी की यह मजाल कि राजा के प्रश्न का उत्तर न दे? राजा ने चीखकर कहा कि यदि उन्होंने उसके प्रश्न का उत्तर न दिया तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। फिर भी सन्यासी केवल राजा की ओर दुखभरी दृष्टि से ताकते रहे। बोले कुछ भी नहीं।

क्रोध में राजा आपे से बाहर हो रहे थे। उन्होंने इधर-उधर देखा कि किस

तरह उस धृष्ट ब्राह्मण को अपमानित करें। अचानक उनकी दृष्टि पास ही पड़े एक मरे हुए सांप पर पड़ी। तुरंत ही शाही तलवार म्यान से निकली और बिजली की तरह लपक कर मरे हुए सांप को नोक से उठा लिया। दूसरे ही क्षण सांप हवा में उछला और ब्राह्मण के गले में जा लिपटा।

राजा हंसे और इस प्रतीक्षा में खड़े रहे कि ब्राह्मण शमीक कुछ कहेंगे, शायद शाप भी दे दें।

लेकिन शमीक ने कुछ नहीं कहा। उनके चेहरे पर दुख का भाव भी उसी प्रकार बना रहा। राजा लज्जित होकर लौट पड़े।

लेकिन एक तीसरा व्यक्ति भी वहां उपस्थित था जो चुपचाप खड़ा यह सब कुछ देख रहा था। वह थे कृश, शमीक के पुत्र शृंगी के मित्र। लेकिन राजा या शमीक दोनों में से किसी को यह पता नहीं था। राजा के लौटने के बाद कृश शृंगी को यह समाचार देने भागे।
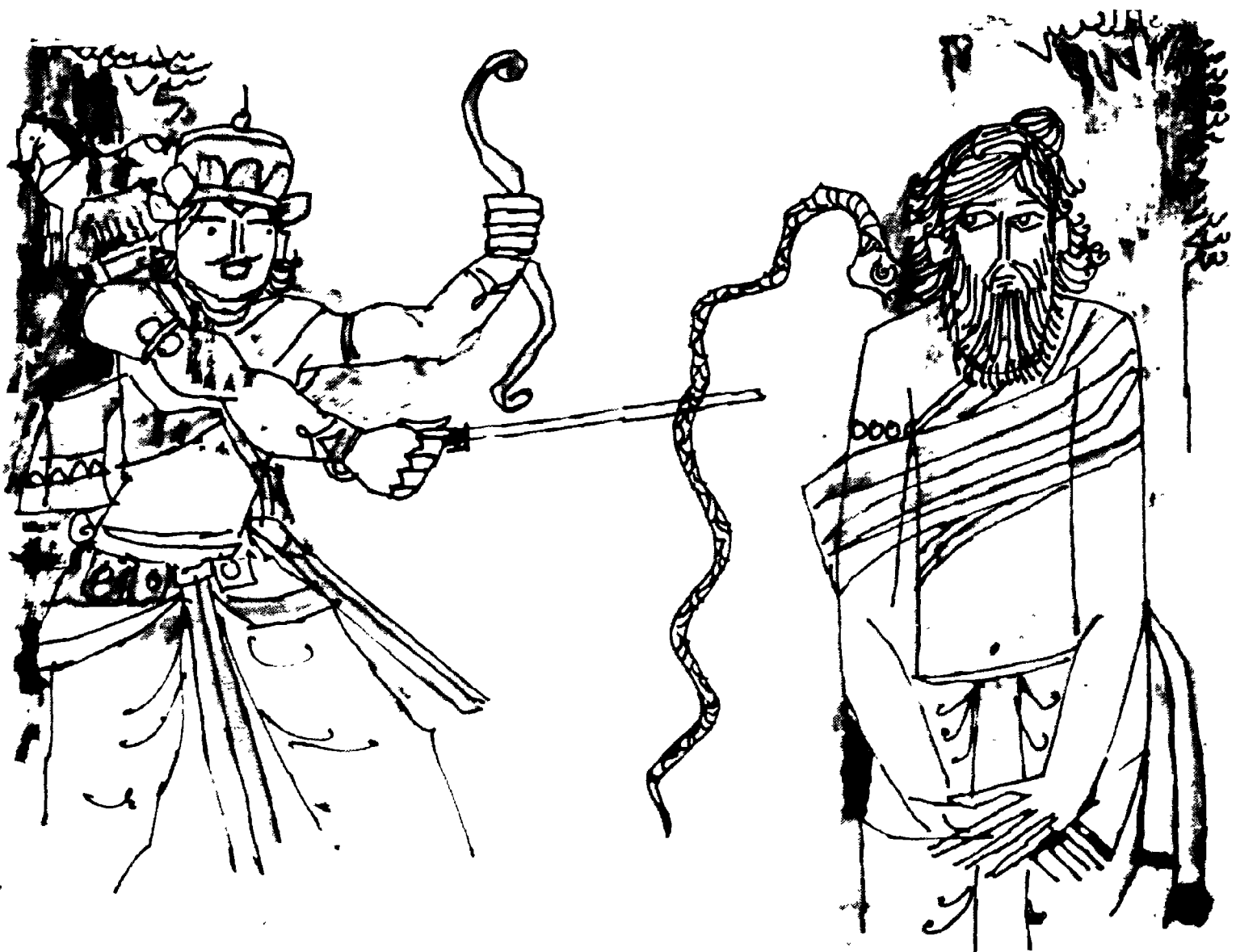
आखिर जब शृंगी मिले तो कृश ने उनसे पूछा, "तुमने उस दिन कहा था कि जंगल-वासियों के लिए सब से पहले भगवान हैं और फिर राजा। कहा था न?"

शृंगी दुर्लभ जड़ी-बूटियां जमा किया करते थे। अपना काम करते हुए उन्होंने अनमने भाव से कहा, "हां, कहा तो था।"

"यदि राजा हमारी परवाह न करे, तो हम उसके स्वामीभक्त क्यों हों?"

शृंगी ने पूछा, "तुम राजा परीक्षित की ही बात कर रहे हो न? वह वानप्रस्थियों का कभी अपमान नहीं करेंगे। क्यों करेंगे भला?"

शृंगी के मित्र ने, जो कुछ-कुछ शरारती थे, चालाकी से कहा, "मान लो मैं तुमसे यह कहूं कि मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा, तो?"

"तो भी मैं तुम्हारा विश्वास नहीं करूंगा," शृंगी ने तुरंत जवाब दिया।

"अगर तुम अपनी आंखों से इसका प्रमाण देखो तो?"

शृंगी ने खीझकर कहा, "कैसा प्रमाण? पहेलियां क्यों बुझा रहे हो? साफ-साफ क्यों नही कहते क्या बात है? तब शायद मैं उस किस्से को समझ सकूं जो तुम सुनाना चाह रहे हो।"

"यह कोई किस्सा-कहानी नहीं, सच बात है," शृंगी के मित्र ने उनका हाथ पकड़कर जंगल की ओर खींचते हुए कहा। वे दोनों वहां पहुंचे जहां शमीक समाधि लगाये बैठे थे। मरा हुआ सांप अभी तक उनके गले में लिपटा हुआ था।

"अरे! पिताजी के गले में मरा सांप लिपटा है!" यह कहते हुए शृंगी आगे की ओर लपके। लेकिन उनके मित्र ने उन्हें पीछे खींच लिया।

"हां, यह मरा हुआ सांप ही है", उन्होंने व्यंग से कहा। "हमारे महाराज, हमारे प्रभु और कृपालु रक्षक राजा परीक्षित ने इसे तुम्हारे पिताजी के गले में

डाला। मैंने स्वयं देखा। और जानते हो तुम्हारे पिता का अपराध क्या था जिसके लिए उन्हें यह दंड दिया गया? क्योंकि राजा ने किसी घायल हिरन के बारे में कुछ पूछा और तुम्हारे पिता ने उत्तर नहीं दिया। राजा उनके ऊपर खूब बिगड़े—मैंने स्वयं सुना। उसके बाद अपनी तलवार की नोक से इस मरे सांप को उठाकर तुम्हारे पिता के गले में डाल दिया। लेकिन मानना पड़ेगा—क्या हाथ की सफाई थी, वाह! ऐसा अचूक निशाना साधा कि सांप ठीक-ठीक तुम्हारे पिता के गले में आ लिपटा! जरा भी चूक नहीं हुई। मैंने स्वयं अपनी आंखों से देखा।''

''लेकिन,'' शृंगी ने चकित होकर पूछा, ''तुमने आगे बढ़कर महाराज को बताया क्यों नहीं कि आज पिताजी के मौन रहने का दिन है?''

''मेरा दिमाग थोड़ा ही खराब था?'' कृश ने मुंह बनाकर उत्तर दिया। ''महाराज बड़े क्रोध में थे उस समय और हाथ में नंगी तलवार थी? तलवार मेरी ही गर्दन पर चल जाती तो?''

शृंगी ने प्रेम और गर्व से अपने वृद्ध पिता की ओर देखा। मरा सांप देखकर उनको क्रोध आ रहा था।

''महाराज ने मेरे पिता का अपमान करके बहुत बुरा किया,'' उन्होंने कहा। ''क्या वह इनके मुख पर यह तेज नहीं देख सके? इनकी आंखों में गरिमा नहीं देख सके?''

''राजा लोग यह सब कुछ नहीं देखते,'' राजाओं के बारे में अपनी सम्मति को इस संक्षिप्त उत्तर में बता दिया कृश ने।

पिता के दुबले-सूखे शरीर पर राजा के अपमानजनक आचरण के प्रमाण को शृंगी जितना ही देखते, उनका क्रोध उतना ही बढ़ता जाता। आखिर उनसे अब और अधिक नहीं सहा गया और उनका सारा क्रोध शाप बनकर उनके मुंह से फूट पड़ा, "भले ही राजा हो, लेकिन वह नीच है जिसने मेरे महान पिता के गले में मरा हुआ सांप डाला। उसने मेरे पिता का ही अपमान नहीं किया, इन सारे वानप्रस्थियों का अपमान किया है जिन्होंने राजा को कभी कोई हानि नहीं

पहुंचायी। मैं राजा को शाप देता हूं। कुरु वंश के उज्ज्वल नाम को कलंकित करने वाले इस अहंकारी राजा की, आज से सात रोज के अंदर, सर्पराज तक्षक के काटने से मृत्यु हो जायेगी।''

इस भयानक शाप के शब्द शृंगी के मुख से निकले ही थे कि उनके पिता ने विचलित होकर अपनी समाधि तोड़ दी और भय से अपने पुत्र के मुंह की ओर देखने लगे। उनके बेटे ने क्रोध में आकर जो कुछ कह डाला था उससे मानों उन पर वज्रपात-सा हुआ। अपने मौन को तोड़ते हुए, आहत स्वर में बोले, ''शृंगी, मेरे बेटे, तुमने यह क्या कर डाला? तुमने नेक राजा परीक्षित को शाप दे डाला जिन्होंने सदा हमारी रक्षा की है, जिनकी कृपा से ही हम वन में शांति के साथ निर्भय होकर रह रहे हैं। तुमने किस कारण ऐसा पागलपन किया? क्या सन्यासियों का यही धर्म है? भगवान ही जानता है कि तुम्हारे क्रोध को वश में न रख पाने के कारण कैसा संकट आयेगा, कैसी अराजकता फैलेगी। तुमने राजा परीक्षित को शाप नहीं दिया, सारे राज्य को शाप दे डाला है, शृंगी। किसी भी दशा में ऐसा करना बहुत ही बुरा होता। राजा परीक्षित के साथ ऐसा करना तो और भी बुरा है क्योंकि वह दंड के भागी नहीं हैं।''

शृंगी का क्रोध उतर चुका था। पिता की बात सुनकर वह पश्चात्ताप से सिर झुकाये खड़े रहे, फिर रोने लगे।

''दुख की बात है कि तुम शाप को वापस भी नहीं ले सकते,'' शमीक ने दुख से विकल होकर कहा। ''तुमने अपने अनुशासन और अपनी विद्वत्ता से यह वरदान पा लिया है कि तुम्हारे मुख से निकली हर बात सच होकर रहेगी। यह जान कर ही मैंने तुम्हें बार-बार समझाया था बेटे, कि बोलने से पहले सौ बार सोच लिया करो।''

वृद्ध शमीक विचार में डूबे बैठे रहे। फिर अचानक उठकर बोले, ''गौरमुख को मेरे पास भेज दो। उसे मैं तुरंत राजमहल भेजूंगा कि वह महाराज को शाप
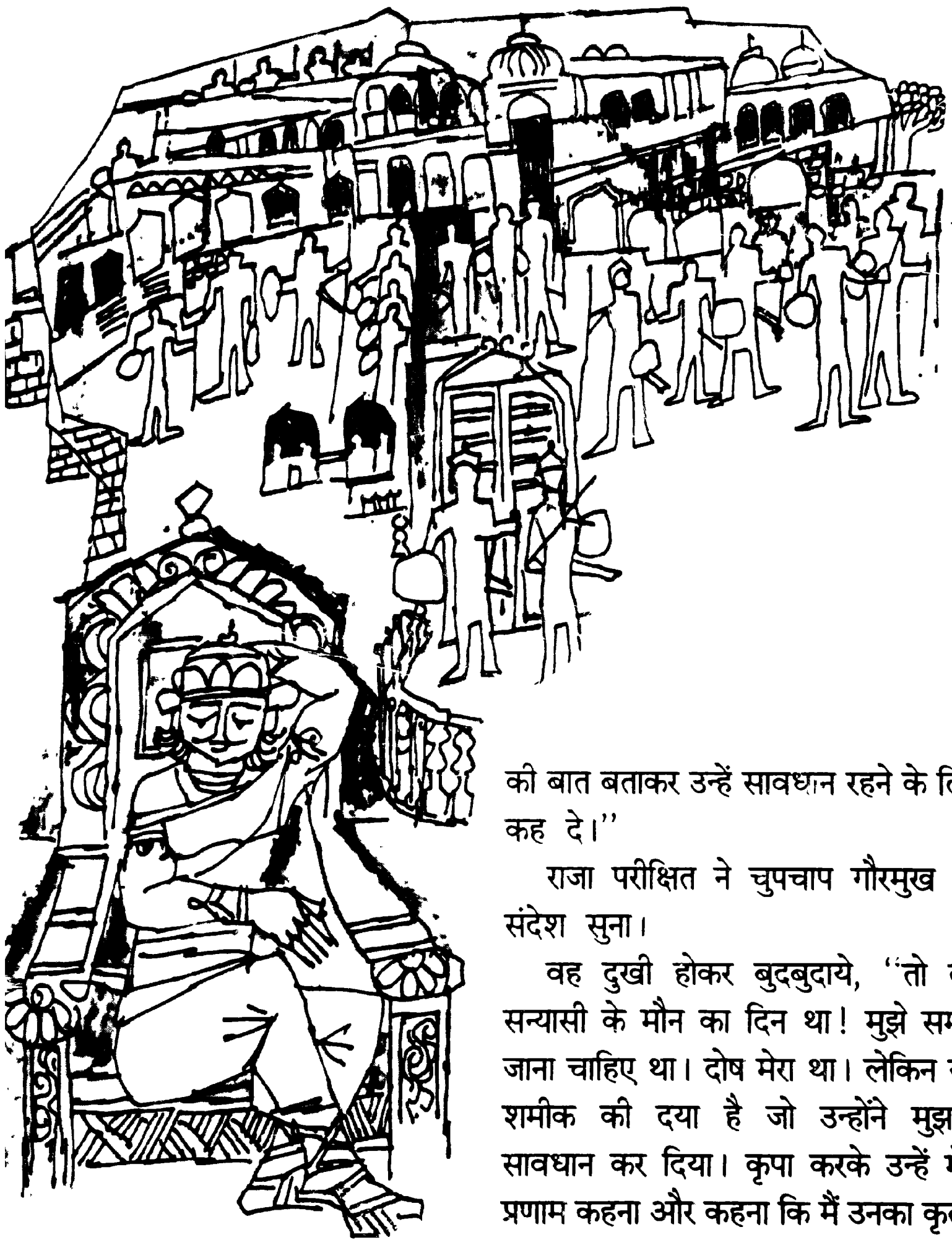
की बात बताकर उन्हें सावधान रहने के लिए कह दे।''

राजा परीक्षित ने चुपचाप गौरमुख का संदेश सुना।

वह दुखी होकर बुदबुदाये, ''तो वह सन्यासी के मौन का दिन था! मुझे समझ जाना चाहिए था। दोष मेरा था। लेकिन यह शमीक की दया है जो उन्होंने मुझको सावधान कर दिया। कृपा करके उन्हें मेरा प्रणाम कहना और कहना कि मैं उनका कृतज्ञ हूं।''

यह कह कर गौरमुख को तो उन्होंने तुरंत विदा कर दिया और सलाह के लिए अपने मंत्रिमंडल को बुला भेजा। मंत्रियों के आने से पहले राजा ने कश्यप को संदेश भिजवाया कि वह तुरंत महल में आ जायें। कश्यप ब्राह्मण थे और सबसे अधिक विषैले सांप के काटे का भी इलाज कर सकते थे।

मंत्रिमंडल के निर्णय के बाद शिल्पी और राज-मिस्त्री महल में बुलवाये गये और रात ही रात में एक अजीब-सी इमारत खड़ी कर दी गयी—बस, एक ऊंचे खंभे पर एक बड़ा कमरा। इसी कमरे में राजा रहने लगे—खंभे के नीचे और कमरे के बाहर सशस्त्र संतरी खड़े थे। उनको कठोर निर्देश था कि कोई कीड़ा भी कमरे के अंदर न घुसने पाये। परिवार के लोगों और मंत्रियों को छोड़, राजा के पास जाने की अनुमति किसी को नहीं थी।

जब कश्यप राजा का आदेश पाकर जल्दी-जल्दी महल की ओर जा रहे थे तो रास्ते में एक बूढ़ा ब्राह्मण बैठा दिखा। वह बहुत ही दुखी लग रहा था।

कश्यप ने पूछा, "क्या हुआ, भाई? सड़क के किनारे इस तरह दुखी क्यों बैठे हो?"

ब्राह्मण ने कहा, "वही कारण है जो आपको इस सड़क पर लिये जा रहा है।"

"वही कारण है?" चकित होकर कश्यप ने पूछा, "पर मैं तो महाराज के दर्शनों के लिए जा रहा हूं। क्या तुम भी वहीं जा रहे हो?"

"हां"।

"राजा को धमकी दी गयी है कि वे नागराज तक्षक द्वारा काटे जायेंगे। उन्हीं की चिकित्सा के लिए मुझे बुलवाया गया है। लेकिन भला आपको क्या काम वहां ?"

"मैं उनको मारने जा रहा हूं।" कहते ही ब्राह्मण ने अपना असली रूप धारण कर लिया। असल में वह सर्पराज तक्षक था।

"यह तो अजीब स्थिति है," कश्यप ने कहा। "तुम उन्हें मारने जा रहे हो और मैं जिलाने। हम साथ-साथ चलें या अलग-अलग?"

तक्षक ने पूछा, "क्या आपको विश्वास है कि आप मेरे विष से राजा को बचा सकेंगे?"

"हां," कश्यप ने बिना किसी संकोच के कहा।

"साबित कीजिए," तक्षक ने चुनौती दी। "मैं इस पौधे को डसता हूं। देखें आप इसे फिर से जिला सकते हैं या नहीं।"

यह कहकर सर्पराज ने अपना मुंह खोला और पौधे को डसकर उसकी जड़ में गहराई तक अपना विष फैला दिया। कुछ क्षणों में पौधा इस प्रकार भस्म हो गया मानों अंदर की आग से जल गया हो। अपने काम से बहुत संतुष्ट होकर तक्षक ने कश्यप से कहा, "चलिए, अब अपनी शक्ति आजमाइए।"

कश्यप ने मुट्ठी-भर राख उठा ली, और प्रार्थना की मुद्रा में आंखें मूंद कर, उसमें हल्की-सी फूंक मारी। फिर राख को उसी जगह गाड़ दिया जहां से उसे उठाया था। कुछ ही देर में वहां हरा अंकुर निकल आया, फिर उसमें दो हरी पत्तियां फूट निकलीं। फिर हरा तना बढ़ने लगा, उसमें नयी-नयी पत्तियां निकलने लगीं और थोड़ी ही देर में पौधा वैसा ही हो गया जैसा पहले था।

तक्षक पहले तो घोर आश्चर्य से यह सब कुछ देखता रहा, फिर हार मान गया। इस प्रकार की चीज उसके लिए नयी नहीं थी। वह कई साधु-सन्यासियों से मिलता रहता था जो ऐसे करिश्मे करते थे और प्रार्थना के बल पर ही चमत्कार कर दिखाते थे।

तक्षक ने कश्यप से कहा, ''मैं आपकी शक्ति मानता हूं। लेकिन राजा परीक्षित के मामले में इसका प्रयोग मत कीजिएगा। इसका कारण है।''

''क्या कारण है?'' कश्यप ने पूछा।

''पहले मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूं,'' उसने कश्यप से कहा। ''क्या आप किसी की होनी में दखल देना उचित समझेंगे?''

''नहीं, उचित तो नहीं समझता। लेकिन यह होनी नहीं, अभिशाप है जो होनी में दखल दे रहा है।''

''नहीं, आपका विचार गलत है,'' तक्षक ने कहा। ''मैं राजा को समय से ले मारने के लिए नहीं जा रहा हूं। मैं तो मृत्यु को बुलाने जा रहा हूं क्योंकि उनके भाग्य में यही लिखा है। मुझे यमराज ने भेजा है—जन्म और मृत्यु के लेखे के अनुसार शृंगी ने जो कुछ कह डाला वह शाप नहीं, भविष्यवाणी थी।''

कश्यप गहरे विचार में डूबे खड़े रहे। "तो क्या राजा परीक्षित के भाग्य में लिखा है कि वे सात दिन के भीतर ही मर जायेंगे?" उन्होंने पूछा, "शृंगी ने शाप न दिया होता तो भी क्या यही होता?"

"देवताओं ने यही उनके भाग्य में लिखा था। मैं तो केवल मृत्यु-देवता का दूत हूं, समय से पहले ही किसी को समाप्त कर देने का साधन नहीं।"

"तब तो मैं इसमें हस्तक्षेप नहीं करूंगा," यह कहकर कश्यप अपने आश्रम वापस चले गये।

तक्षक बड़ी देर तक राजा के कक्ष में घुसने की तरकीब सोचता रहा। शृंगी की भविष्यवाणी के सातवें दिन उसे एक तरकीब सूझी। उसने झटपट अपने कुछ सर्प मित्रों को बुला भेजा और उन्हें आदेश दिये।

उसने कहा, "यह काम धोखे से ही किया जा सकता है। राजा की रक्षा का इंतजाम बहुत पक्का है।"

उस समय राजा परीक्षित, उनके परिवार के लोग और उनके दरबारी इस बात की खुशी मना रहे थे कि छह दिन बिना किसी संकट के टल गये। सातवां दिन भी समाप्त होनेवाला था। सूर्यास्त के साथ-साथ शाप का भी अंत हो जायेगा, और दिन डूबने को कुल एक घंटा बाकी था।

उस दिन काफी संध्या बीते कुछ साधु-सन्यासी खंभे के नीचे खड़े दिखायी दिये। एक ने प्रहरियों से कहा, "हम फल-फूल की भेंट लेकर महाराज को आशीर्वाद देने बहुत दूर से आये हैं।"

प्रहरियों ने सन्यासियों के कपड़ों और फल-फूल की टोकरी की अच्छी तरह तलाशी ली। जब संदेह की कोई बात न दिखायी दी तो उन्हें राजा के पास जाने दिया। उन्होंने सोचा, शाम का समय करीब-करीब बीत चुका है, राजा को अगर ये सन्यासी आशीर्वाद देने गये तो कोई हर्ज नहीं। सन्यासियों ने फल-फूल की टोकरी राजा को भेंट की, उन्हें आशीर्वाद दिया और बाहर चले गये। जंगल में

पहुंच कर सन्यासियों ने अपना सर्प का असली रूप धारण कर लिया और जंगल की हरियाली में गायब हो गये।

सूर्यास्त का समय हुआ। राजा के कक्ष में खुशियां मनायी जा रही थीं। बस थोड़ी देर और, फिर शाप का समय निकल जायेगा, और राजा को नयी आयु मिलेगी।

राजा ने अपने परिवार और मंत्रियों को बुलाकर कहा, ''सूरज डूब रहा है। आओ, हमारे साथ ये स्वादिष्ट फल खाओ जो कृपालु सन्यासी दे गये हैं।''

दरबारियों ने हाथ बढ़ाकर अपनी-अपनी पसंद का फल उठा लिया। राजा का हाथ एक रसीले आम पर पड़ा। उन्होंने आम चूसा, बड़ा ही स्वादिष्ट था। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि उसकी गुठली में एक नन्हा सा कीड़ा है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। प्रायः रसभरे आमों की गुठालियों में कीड़े निकल आते थे। राजा ने खिड़की से बाहर अस्त होते हुए सूर्य को देखा और हंसकर उस नन्हे काले कीड़े को लक्ष्य करके बोले, ''अब तक्षक के आने का समय नहीं रहा। बोलो नन्हे कीड़े, तुम जानते हो कि तुम्हारा राजा अपने काम में असफल क्यों हो गया? लेकिन तुम्हें भला क्या मालूम? इसका उत्तर तो तक्षक ही दे सकता है।''

इतना कहना था कि राजा की भय से फैली आंखों ने देखा कि वह नन्हा-सा काला कीड़ा अचानक बढ़कर एक बड़ा शानदार नाग बन गया। जैसे-ही सूर्य पश्चिम में डूबा, तक्षक ने अपना विशाल फन फैलाया और राजा परीक्षित को तुरंत डस लिया।
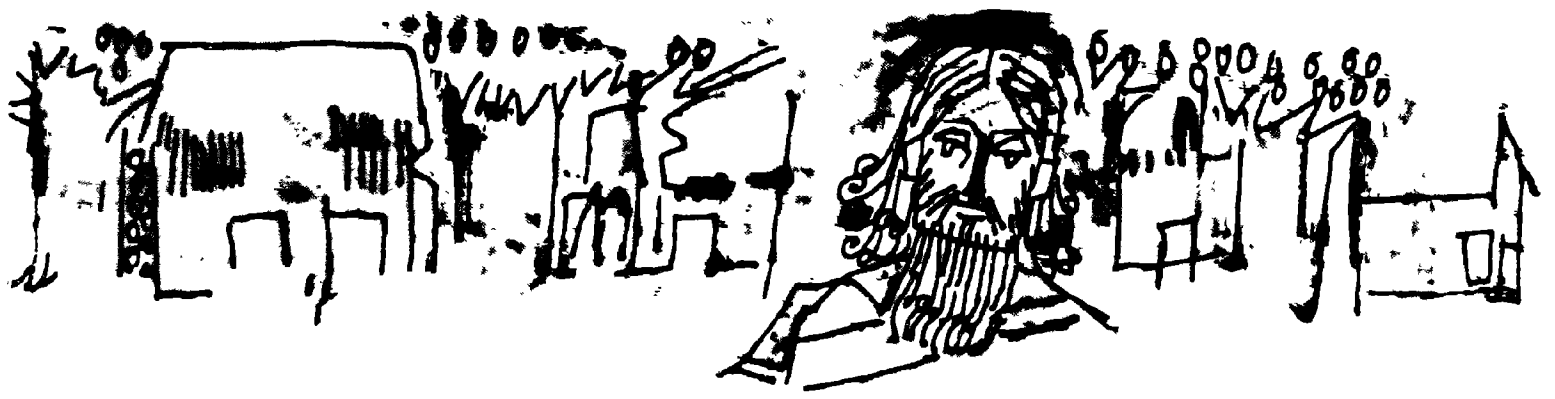
उपमन्यु ने सबक सीखा

बहुत, बहुत दिन हुए, धौम्य नाम के एक ऋषि थे। उनके आश्रम में अनेक बालक पढ़ा करते थे। उनमें से एक का नाम था उपमन्यु। उपमन्यु और दूसरे बालक गुरुजी के साथ आश्रम में ही रहते थे और शिक्षा ग्रहण करते थे।

आश्रम के नियम बड़े ही कठोर थे। आज्ञाकारिता के बारे में तो बड़ा ही कठिन नियम था। गुरुजी के प्रत्येक आदेश का पालन आंखें बंद करके करना होता था। प्रश्न या किसी प्रकार की शंका करना मना था। इसी प्रकार दूसरा कठोर नियम था भोजन के बारे में। आश्रम के विद्यार्थी बालक निकट के गांवों से भिक्षा में पका-पकाया भोजन ले आया करते थे। वे जो कुछ लाते, गुरुजी के आगे रख देते। फिर गुरुजी सबको भोजन बांटते और उसी में से अपने लिए भी निकाल लेते। रोज का यही नियम था।

आश्रम के अहाते में फलों के बाग थे और दूध के लिए कई गऊएं भी थीं।

बालको को दो विषय सिखाये जाते थे—धर्म और युद्ध की कला। जो लड़के बड़े होकर आचार्य या पुरोहित बनना चाहते थे, वे वेद आदि का अध्ययन करते

और धार्मिक संस्कारों, जैसे विवाह, यज्ञोपवीत, यज्ञ, श्राद्ध आदि कराने की विधि और मंत्रोच्चार सीखते थे। जो लड़के सैनिक बनना चाहते थे वे शस्त्र-विद्या और युद्ध के नियम आदि सीखते थे।

आश्रम के गुरु केवल शिक्षक ही नहीं, वे बालकों के माता-पिता भी थे। लड़कों के मां-बाप उन्हें गुरुजी की देख-रेख में छोड़ जाते थे और वे उन्हीं के समान बड़े प्रेम और ममता से अपने विद्यार्थियों की देखभाल किया करते थे।

वे इसका पूरा ध्यान रखते कि उनके मस्तिष्क का ठीक विकास हो, साथ ही उनके चरित्र का निर्माण भी ठीक हो और शरीर भी निरोग रहे। गुरुजी लड़कों की आदतों पर कड़ी दृष्टि रखते। अनुशासन के बारे में तो वे बड़े कठोर थे। कोई बालक बीमार पड़ जाता तो तन-मन से उसकी सेवा करते, लेकिन उससे कोई अपराध हो जाता तो कड़ी से कड़ी सजा भी देते। ऐसा था उनका नियम। उनके आदेशों के बारे में प्रश्न करने का साहस राजा को भी नहीं था।

एक दिन धौम्य ने उपमन्यु को बुलाकर कहा, "बेटा उपमन्यु, राजा एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। मेरी इच्छा है कि तुम कुछ दिन उनके पास जाकर रहो। तुम उनकी सहायता करना और देखना कि पंडित लोग किस प्रकार अपना काम करते हैं। उपमन्यु खुशी-खुशी राजा के महल की ओर चल पड़ा। उसे वहां राजा की खास सेवा में नियुक्त
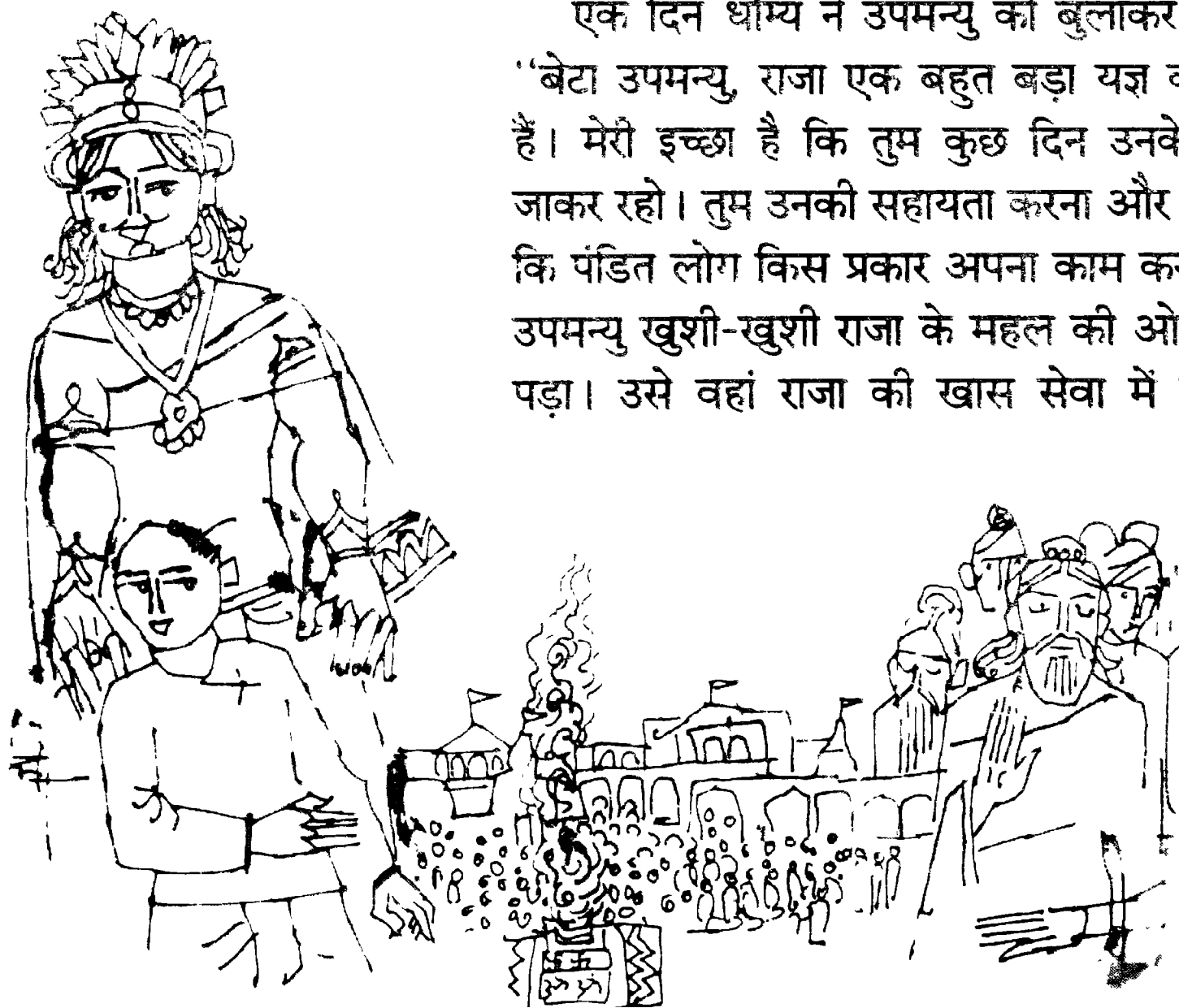
किया गया। उपमन्यु बड़ा ही परिश्रमी और हंसमुख बालक था, इस कारण सभी लोग उससे बहुत प्रसन्न थे। जब कुछ दिनों बाद वह अपने आश्रम में लौटा तो गुरुजी ने उसे बुल भेजा।

गुरुदेव ने पूछा, "बेटा उपमन्यु, क्या तुम इतने दिनों तक उपवास करते रहे?"

"नहीं तो, गुरुदेव," उपमन्यु ने चकित होकर उत्तर दिया।

"मेरी भी यही धारणा थी।" गुरुदेव ने कहा, "तुम काफी हृष्ट-पुष्ट लग रहे हो। तुमने महल के बढ़िया-बढ़िया पकवान छककर तो नहीं खाये?"

"नहीं, गुरुदेव। मैंने महल के पकवान नहीं खाये। सदा की तरह अपना भोजन गांव से ही मांग कर लाता था। गांव महल से तीन मील दूर ही तो है।"

गुरुजी ने कहा, "लेकिन मैंने तो तुम्हें आश्रम में भोजन लाते नहीं देखा।"

उपमन्यु को सहसा याद आया कि आश्रम के नियम के अनुसार उसे सारा खाना गुरुजी के आगे लाकर रख देना चाहिए था। उसने अपना माथा ठोक कर भूल स्वीकार की और गुरुदेव से क्षमा मांगी।

उस दिन उपमन्यु ने भिक्षा में मिला सारा भोजन लाकर गुरुजी के आगे रख दिया। उन्होंने खाना रखवा लिया और इशारे से उसको चले जाने को कह दिया। उपमन्यु सारा दिन प्रतीक्षा करता रहा लेकिन किसी ने उसको खाना नहीं दिया। वह भूखा ही सो गया।

दो दिन बाद धौम्य ने उपमन्यु को फिर बुला भेजा। उन्होंने सोचा कि भूख के

मारे वह अधमरा-सा हो गया होगा। लेकिन उनको देखकर आश्चर्य हुआ कि लड़का पहले की ही तरह चुस्त और स्वस्थ लग रहा है।

धौम्य ने कहा, "उपमन्यु मैंने दो दिन तक तुम्हारा लाया हुआ सारा भोजन रखवा लिया और तुमको भूखा रखा। मैंने सोचा था कि तुम भूख के मारे कमजोर हो गये होगे। लेकिन तुम तो वैसे ही चुस्त हो और पहले की ही तरह दौड़-भाग कर रहे हो। इसका क्या रहस्य है?"

"गुरुदेव !," उपमन्यु ने उत्तर दिया, "मैं गांव में दोबारा भिक्षा मांगने जाता हूं।"

उसका उत्तर सुनकर धौम्य अप्रसन्न हुए। "तुमने फिर मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया? मैंने कितनी बार बताया है, गांव से दिन में केवल एक बार भोजन लाया जायेगा। बताया था न? उत्तर दो, उपमन्यु!"

"हां, गुरुदेव !," उपमन्यु ने क्षीण स्वर में कहा। "भूख के मारे मैं यह भूल गया था।"

धौम्य ने गंभीर स्वर में कहा, "तुमको ध्यान रखना चाहिए कि यह गांव केवल हमारे आश्रम की ही सहायता नहीं करता, औरों की भी करता है। उनका कृतज्ञ होने के बजाय तुमने लोभ किया, उनसे दोबारा भोजन मांगा। जाओ, गऊओं को चराने ले जाओ और मैंने जो कुछ कहा है, उस पर विचार करो।"

उपमन्यु का दंड जारी रहा। वह गांव से खाना ला कर आश्रम में दे देता। उसके बाद वह भोजन उसकी आंखों के आगे न आता। आश्रम में सब लोग खाते-पीते, केवल उपमन्यु को खाना न मिलता। इस प्रकार तीन दिन और गुजर गये। गुरुजी इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि उपमन्यु आकर खाना मांगे। लेकिन वह न आया। यही नहीं, आश्चर्य की बात तो यह थी कि वह उसी प्रकार दौड़-भाग कर अपना काम भी कर रहा था। कमजोरी का नाम-निशान भी नहीं। आखिर गुरुजी ने उसे फिर बुला भेजा और उससे पूछा, "कहो उपमन्यु! आज

तुम्हें गऊओं के साथ जाने में कोई कठिनाई हुई?''

''नहीं तो गुरुदेव!,'' उपमन्यु ने कुछ हैरानी से कहा, ''जरा भी नहीं।''

बड़े शांत स्वर में धौम्य ने कहा, ''मैं इसलिए पूछ रहा था क्योंकि तुमने दो दिन से खाना नहीं खाया है। क्या भूख के मारे तुम्हारी टांगे नहीं कांपती? सिर नहीं चकराता?''

''लेकिन गुरुदेव, मैं भूखा तो नहीं था,'' उपमन्यु ने कहा।

''क्या?'' अब गुरुदेव की बारी थी हैरान होने की। ''क्या तुमने इसी अवस्था में भूख पर विजय पा ली है?''

उपमन्यु ने धीरे से कहा, ''मैंने गाय का दूध पी लिया था।''

गुरुदेव कुछ देर चुप रहे। उपमन्यु का बुरा हाल था। गुरुजी को क्रोध भी हुआ और दुख भी। कुछ क्षणों बाद वह बोले, ''उपमन्यु, मैंने देखा है कि तुम झूठ कभी नहीं बोलते। तुम स्वच्छ रहते हो। पढ़ाई में मन लगाते हो। प्रसन्न रहते हो और दूसरों को भी प्रसन्न रखते हो। लेकिन तुम अपने पेट के इतने वश में हो कि उसकी खातिर नियम तक भूल जाते हो और स्वार्थी बन जाते हो। अपने ऊपर तुम बिल्कुल काबू नहीं रख पाते। और बेटे, मैंने तुम्हें कितनी बार बताया है कि जिस व्यक्ति का शरीर उसके दिमाग का आदेश नहीं मानता, वह कोई भी गलत काम कर सकता है। मेला-तमाशा देखने की खातिर झूठ बोलेगा, भूख को शांत करने के लिए चोरी करने से भी नहीं हिचकिचायेगा, और कीमती वस्त्रों के लिए लोगों को धोखा देगा। क्या यही सब सीखने के लिए तुम्हारे पिताजी ने तुम्हें मेरे हवाले किया था? बोलो, उपमन्यु!''

गुरुदेव यदि उपमन्यु को बुरा-भला कहते, डांटते-डपटते तो वह शायद इतना लज्जित न होता जितना उनके ठंडे और दुखभरे स्वर को सुनकर हुआ। उसने उसी क्षण संकल्प कर लिया कि गुरुदेव को कभी अप्रसन्न होने का अवसर नहीं देगा। उसने सिर झुकाकर, विनय से कहा, ''गुरुदेव, जब तक आप स्वयं अपने हाथों से नहीं देंगे, मैं कुछ नहीं खाऊंगा।'' उस दिन उपमन्यु ने कुछ नहीं खाया। दूसरे दिन भी भूखा रहा। तीसरे दिन हमेशा की तरह वह गऊओं को हांक कर जंगल में ले गया तो भूख के मारे उसकी जान निकली जा रही थी। आखिर उसने एक पेड़ के रसभरे पत्ते तोड़कर खा लिये। लेकिन दुर्भाग्य से वह साधारण पेड़ नहीं था। उसकी पत्तियां दवा के काम आती थीं। पत्तियों की गंध इतनी तेज थी कि उपमन्यु की आंखें जलने लगीं, उनमें पानी भर आया और अचानक उसकी दृष्टि जाती रही। वह अंधा हो गया। डर के मारे उसके होश-हवास उड़ गये। टटोलता-टटोलता, गिरता-पड़ता, वह आश्रम की ओर लौटने लगा। वह चाहता था कि अंधेरा होने से पहले आश्रम पहुंच जाय। लेकिन सामने का रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। बार-बार भटक जाता था। वह गलत रास्ते पर जा निकला और एक गहरे अंधेरे गड्ढे में गिर पड़ा। डर के मारे वह पड़ा रोता रहा। धीरे-धीरे रात हो गयी।

जब काफी अंधेरा हो गया और धौम्य ने उपमन्यु को आश्रम में नहीं पाया तो दूसरों से पूछताछ की।

एक छात्र ने कहा, ''वह गऊओं को चराने के लिए जंगल की ओर गया था। गऊएं तो लौट आयीं, लेकिन वह नहीं आया अभी तक।''

गुरुदेव झटपट उठ खड़े हुए और बोले, ''अंधेरा हो रहा है, चलो उसे ढूंढ़ें।''

शिष्यों को साथ लेकर गुरुदेव उपमन्यु को ढूंढ़ने जंगल की ओर चल पड़े।

जहां-जहां वह जाया करता था, सभी जगह उन्होंने देख लिया। उसका पता न चला। अंत में एक अनजाने रास्ते पर चलते-चलते वह जोर-जोर से पुकारने लगे, "उपमन्यु! कहां हो बेटा? मेरी आवाज सुन रहे हो?"

रोते-रोते, थककर, उपमन्यु सो गया था। गुरुदेव की पुकार कानों में पड़ी तो चौंककर उठ बैठा।

"मैं यहां हूं, गुरुदेव," उसने चिल्लाकर कहा। "इस गड्ढे में पड़ा हूं।"

आखिर गुरुदेव ने उसको देख लिया। वह बेहद डरा हुआ था, उसके कपड़े तार-तार हो गये थे, गालों पर आंसू की लकीरें थीं। गड्ढे के किनारे खड़े धौम्य ने नीचे झांककर उपमन्यु को देखा और पूछा, "तुम इस गड्ढे में क्यों बैठे हो, उपमन्यु?"

अपने दुख और अभिमान को कठिनाई से दबाकर उपमन्यु ने कहा, "गुरुदेव, मैं अपनी इच्छा से यहां नहीं पड़ा हूं। मैं इसमें गिर गया। मैंने भूख के मारे एक पेड़ के पत्ते खा लिये। उनको खाते ही मेरी आंखें जलने लगीं और मेरी दृष्टि एकदम धुंधली हो गयी। मुझे लगता है कि मैं अंधा हो गया हूं, गुरुदेव।" फिर

रुककर उसने पूछा, "गऊएं तो ठीक-ठाक हैं न?"

उपमन्यु के मित्रों ने उसको आश्वासन दिया कि गऊएं सही-सलामत आश्रम में लौट आयी थीं। धौम्य ने उपमन्यु से उस पेड़ का वर्णन करने को कहा जिसकी पत्तियां खाकर वह अपनी आंखें गंवा बैठा था। उपमन्यु बता चुका तो गुरुदेव ने कहा, "उपमन्यु, मेरा विचार है कि तुम यहीं रहो और भगवान से प्रार्थना करो कि वह तुम्हारी दृष्टि लौटा दे। यदि तुम सच्चे मन से प्रार्थना करोगे तो ईश्वर तुम्हारी अवश्य सहायता करेगा। यह तो तुम जानते हो, है न? जब तुम्हारी दृष्टि तुम्हें वापस मिल जाय तो आश्रम में लौट आना।"

धौम्य का फैसला सुनकर उपमन्यु समझ गया कि गुरुदेव उसको चुनौती दे गये हैं। यह उसकी परीक्षा है। उसका मन साहस और गर्व से भर गया। उसे लगा कि वह बच्चा नहीं रहा, अचानक बड़ा हो गया है। उसने विनय से सिर झुकाकर गुरुदेव का आदेश स्वीकार किया। आसन लगाकर ध्यान की मुद्रा में बैठ गया और प्रार्थना में लीन हो गया। उसके मित्र आश्चर्य से मुंह फाड़े उसकी ओर देखते रहे। गुरुदेव ने उनका ध्यान भंग करते हुए कहा, "चलो, आश्रम लौट चलें।" सब लौट गये।

जंगल में बिल्कुल अंधेरा था। डरावनी आवाजें आ रही थीं। लेकिन अब उपमन्यु के मन में जरा भी भय नहीं था। पहले तो वह जोर-जोर से प्रार्थना करता रहा, "हे परमेश्वर, त्रिभुवन के स्वामी, मेरी रक्षा करो। मेरी दृष्टि लौटा दो, प्रभु। तुम दयावान हो, पतितपावन हो, जग के पालनकर्ता हो। मेरी मूर्खता को क्षमा करो, भगवान। मेरी गलतियों को क्षमा करो जिनके कारण मुझको यह दंड मिला।"

फिर उपमन्यु अपनी प्रार्थना में लीन हो गया। उसे किसी चीज की सुध-बुध नहीं रह गयी। उसकी आंखें मुंदी थीं, होंठ हिल रहे थे...।

उसका सारा शरीर शिथिल हो गया था। इतने में उपमन्यु को लगा कि अश्विनी कुमार नामक जुड़वां तारे आकाश से उतरकर उसके सामने आ खड़े हैं। गुरुदेव ने बताया था कि अश्विनी कुमार देवताओं के वैद्य हैं।

जगमग-जगमग करते वे उसके सामने खड़े पूछ रहे थे, "तुमने हमें पुकारा था, उपमन्यु? हमसे क्या चाहते हो?"

उपमन्यु ने उनसे विनती की कि उसकी आंखें ठीक कर दें। मुस्कराकर अश्विनी कुमारों ने उसको एक टिकिया दी जिसमें दवा मिली हुई थी और उससे खाने को कहा। उपमन्यु एक टुकड़ा तोड़कर मुंह में डालने ही वाला था कि अचानक उसे आश्रम के नियम की याद आ गयी। उसने टिकिया को मुट्ठी में बंद कर लिया। अश्विनी कुमारों से उसने कहा, "मैं इसके लिए आपका कृतज्ञ हूं।"

"तुम इसे खाते क्यों नहीं?" उन्होंने पूछा।

उपमन्यु ने कहा, "मैं इसे अपने गुरु को भेंट करूंगा। हमारे आश्रम का यही नियम है।"

अश्विनी कुमारों ने उसकी ओर चुभती नजर से देखकर पूछा, "तो क्या बीमारी में भी नियम नहीं तोड़े जा सकते?"
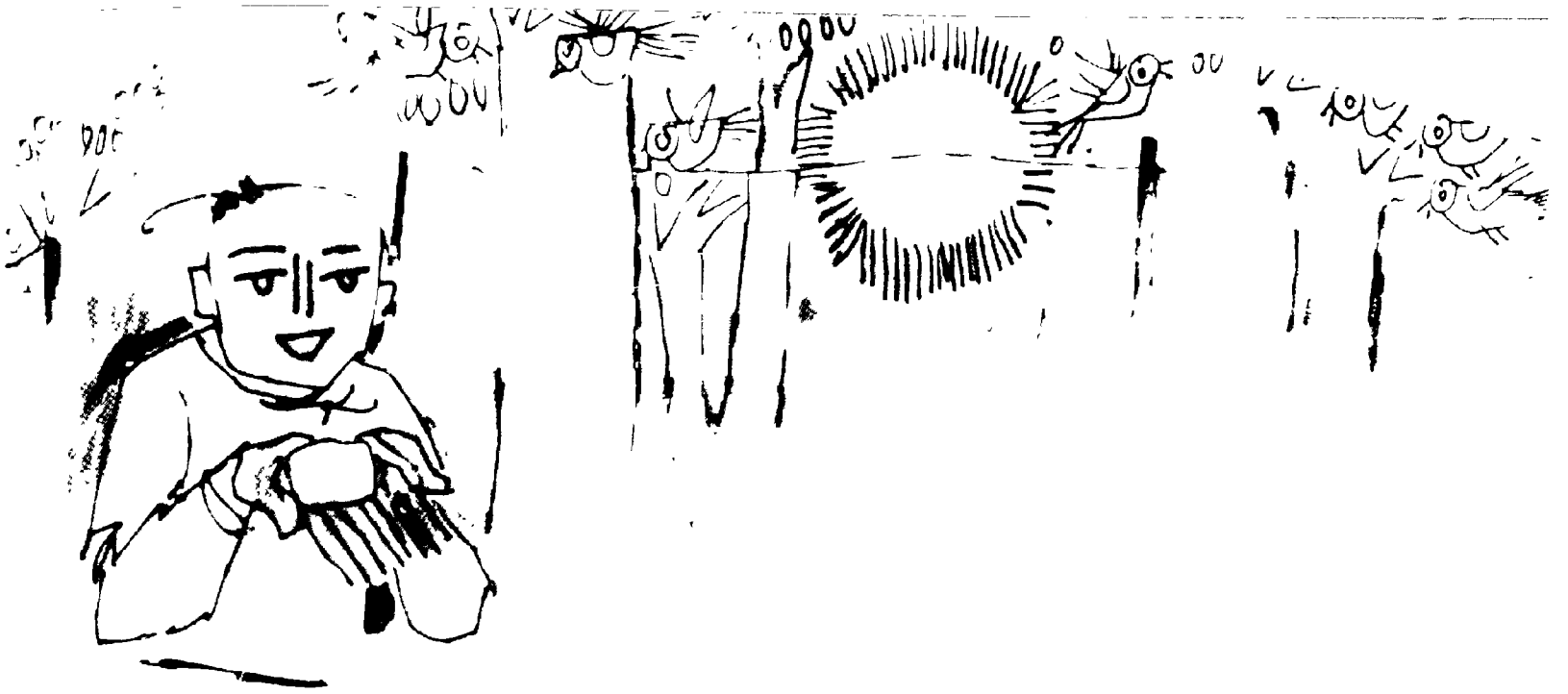
"नहीं, जब तक गुरुजी अनुमति न दे दें," उपमन्यु ने दृढ़ता से कहा।

उपमन्यु को ऐसा लगा कि उसका उत्तर सुनकर अश्विनी कुमारों ने मुस्कराकर एक दूसरे की ओर देखा। फिर उन्होंने हाथ उठाकर उसको आशीर्वाद दिया और उसके बाद आकाश में उड़ गये और फिर तारे बन कर चमकने लगे।

सुबह-सुबह जब उपमन्यु ने आंखें खोलीं तो पेड़ों पर चिड़ियां चहक रही थीं। कैसा चमत्कार! उसकी दृष्टि लौट आयी थी! वह पहले की तरह ही देख सकता था। ऊपर नीले आकाश में रूई के गोले जैसे सफेद बादल तैर रहे थे। ऊंचे-ऊंचे पेड़ों से छन कर सूरज की किरणें कलियों पर पड़ती थीं और वे चटक कर खिल उठती थीं। यह सब कुछ उपमन्यु देख सकता था। उसने वह गड्ढा भी देखा जिसमें वह रात भर पड़ा रहा था। जब वह उठा तो गीली मिट्टी पर पड़ी अपने शरीर की छाप को भी उसने देखा। उसकी मुट्ठी में अब भी कुछ बंद पड़ा था। उपमन्यु ने सोचा, यह जरूर वह टिकिया होगी जो अश्विनी कुमारों ने उसको दी थी।

मुट्ठी में टिकिया संभाले वह किसी प्रकार गड्ढे से बाहर निकला और दौड़ता हुआ आश्रम पहुंचा। इस समय न तो उसको कमजोरी लग रही थी, और न डर। उसके शरीर में स्फूर्ति थी और हृदय आनंद से भरा था।

आश्रम पहुंच कर वह सीधा गुरुदेव के पास पहुंचा। गुरुदेव नें उसे देखा लेकिन कुछ कहा नहीं। वह सुनना चाहते थे कि उपमन्यु को क्या कहना है।

"मैं वापस आ गया, गुरुदेव," उपमन्यु ने कहा। "अश्विनी कुमारों ने मेरी आंखें ठीक कर दी हैं। उन्होंने मुझे कुछ खाने को दिया था।" फिर उसने गर्व से सिर ऊंचा कर के गुरुजी की ओर देखकर कहा, "लेकिन मैंने नहीं खाया। देखिए गुरुदेव, यह चीज अभी तक मेरी मुट्ठी में बंद पड़ी है। जब तक आप नहीं कहेंगे, मैं नहीं खाऊंगा।"

यह कह कर उसने मुट्ठी खोली तो क्या देखता है कि उसमें जंगल की मिट्टी भरी है।

हैरान होकर उपमन्यु ने पूछा, "तो क्या वह स्वप्न था?"

अब धौम्य बोले। उन्होंने कहा, "तुम्हारे लिए तो वह सत्य ही था, उपमन्यु। उतना ही जितना कि तुम्हारी दृष्टि का वापस आ जाना सच है। मुझे आशा है कि तुम्हारी भूख भी लौट आयी होगी, बेटा।"

इसके पहले कि उपमन्यु कुछ उत्तर दे पाता, गुरुदेव ने फिर कहा, "कल हममें से न तो किसी ने खाना खाया और न कोई सोया। चलो, जल्दी से स्नान कर आओ। फिर हम सब चलकर दही-भात खायें।"

भीम और बकासुर

भीम पांच पांडवों में से एक थे। पांडवों को अपने उत्तराधिकार के लिए अपने सौ चचेरे भाइयों से लड़ना पड़ा था। कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद पांडवों को हस्तिनापुर का राज्य मिल गया था। लेकिन उससे पहले उनके चचेरे भाइयों ने, जो कौरव कहलाते थे, उन्हें खत्म करने के अनेकों प्रयत्न किये।

एक बार कौरवों के इस प्रकार के षड्यंत्रों से अपनी रक्षा करते हुए, पांचों भाई अपनी मां कुंती के साथ एकचक्र नामक एक शांतिपूर्ण गांव में पहुंचे। उन्हें वह स्थान पसंद आया और उन्होंने तय किया कि जब तक कौरवों को उनका पता न लग जाय, वे उसी गांव में रहेंगे। वे रहने का स्थान खोज रहे थे कि एक कृपालु ग्रामीण ने उनसे अपने मकान में चलकर रहने को कहा। उसका मकान काफी बड़ा था। पांडवों ने उसको धन्यवाद दिया और उसके घर रहने चले गये।

एक दिन भीम और कुंती बैठे बातें कर रहे थे कि उन्हें लगा जैसे कोई रो रहा

है। कुंती झटपट उठकर देखने के लिए अंदर गयी कि क्या हुआ है। जैसे ही वह कमरे के निकट पहुंचीं, उन्हें ग्रामीण परिवार की बातचीत सुनायी दी।

गृहस्वामी कह रहा था, "अब तो बड़ी देर हो चुकी है। कहीं जाने का समय नहीं रहा। हम सब के भाग्य में यहीं मरना लिखा है क्योंकि हम परिवार के किसी भी व्यक्ति को नहीं छोड़ सकते। मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि कहीं ओर चले जायें। लेकिन तुम राजी नहीं हुई। तुमने कहा कि मैं यहीं जन्मी हूं और यहीं मरूंगी। अब तुम्हारी इच्छा पूरी होने वाली है। सिर्फ तुम नहीं मरोगी, हम चारों मरेंगे।"

यह सुनकर हैरानी और भय से कुंती के पैर मानों जम गये।

"इससे अच्छा क्या हो सकता है कि हम दोनों और हमारे बच्चे साथ ही मर जायें। इससे अधिक हमें और क्या चाहिए? लेकिन हमारा दुर्भाग्य, मरना तो सिर्फ एक को है। मैंने बहुत सोचा। यह हो नहीं सकता कि बच्चों में से किसी का बलिदान किया जाय। रह गये आप और मैं। अगर मृत्यु आपको उठा ले गयी तो इन दोनों बच्चों का पालन-पोषण मैं कैसे करूंगी? मैं किस तरह अपना और इनका पेट पालूंगी? कौन-सा काम करूंगी कि इज्जत के साथ निर्वाह हो जाय। बेटी का ब्याह कैसे करूंगी? इस कारण मुझे ही जाना चाहिए जिससे आप रहकर बच्चों की देखभाल करते रहें। फिर यह मेरे लिये उचित दंड भी होगा क्योंकि आपकी इच्छा के खिलाफ यहां बने रहने का हठ मैंने ही किया था। तो अब चर्चा बंद करें। फैसला हो गया।"

कुंती समझ गयीं कि इस नेक ग्रामीण परिवार के ऊपर कोई भयानक संकट आया है। उन्होंने सोचा कि आगे बढ़कर पूछें कि क्या बात है। तभी अचानक लड़की का स्वर सुनकर रुक गयीं। लड़की स्वयं मरने के लिए जाना चाह रही थी ताकि उसके माता-पिता दोनों जीवित रहकर उसके नन्हे भाई का लालन-पालन कर सकें।
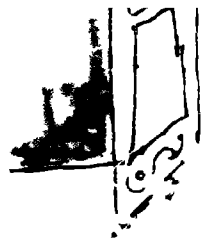
अब तो कुंती से नहीं रहा गया। जल्दी से कमरे के अंदर जाकर बोलीं, "क्षमा कीजिए। मैंने आपकी बातचीत सुन ली है। मैं आपके दुख का कारण जानना चाहती हूं। हो सकता है हम आपकी सहायता कर सकें। जो भी संकट है, कम से कम हम सब मिलकर उसका सामना कर सकते हैं।"

कुंती एकदम अंदर आकर बोलने लगीं तो ग्रामीण परिवार चकित होकर उनका मुंह ताकने लगा। उनकी बात सुनकर पुरुष ने कहा, "आप दयालु हैं। आपकी बड़ी कृपा है कि हमारी सहायता करना चाहती हैं। लेकिन हमारी सहायता कोई मनुष्य नहीं कर सकता, कर सकता है तो बस भगवान।"

"मझे सारी बात बताइए," कुंती ने आग्रह किया।

"इस देश का राजा डरपोक है। शासन करना नहीं जानता और मूर्ख भी है। आलसी होने के कारण उसने राजकाज देखने के लिए कई अधिकारियों को नियुक्त किया है जो राजा के नाम से शासन करते हैं। इस गांव का और आसपास के इलाकों का शासक वक नाम का दैत्य है। वह नरभक्षक है — पहाड़ जैसा ऊंचा और भारी-भरकम, लंबे-लंबे उलझे बाल और लाल डरावनी आंखें। जब वह चलता है तो धरती कांपने लगती है। जब वह गरजता है तो आकाश में चिड़ियां डर के मारे तितर-बितर होकर उड़ जाती हैं। हमें प्रतिदिन एक गाड़ी भरकर भात, दो भैंसें और एक आदमी उसके खाने के लिए भेजना पड़ता है। न भेजें तो हमारी खैर नहीं। इसलिए हम सबने फैसला किया था कि प्रति दिन

बारी-बारी एक परिवार से एक व्यक्ति दैत्य का भोजन बनने के लिए भेजा जाय। कल हमारे परिवार की बारी है। हम चार हैं। हम यही तय करने की कोशिश कर रहे हैं कि कल हममें से किसका बलिदान किया जाय।"

इस विचित्र और भयानक कहानी को सुनकर कुंती अवाक् रह गयीं। लेकिन उन्होंने मन में संकल्प कर लिया कि ग्रामीण परिवार की सहायता अवश्य करेंगी। बहुत सोचकर उन्होंने एक फैसला किया।

"अगर आप स्वीकार करें तो मैं एक सुझाव दूं?"

"हम अवश्य आपकी बात मानेंगे। हम लोग तो इतने परेशान हैं कि कुछ सूझता ही नहीं।"

"तो सुनिए," कुंती ने कहा। "आपका एक ही पुत्र है और वह भी अभी बच्चा है। मेरे पांच जवान तगड़े बेटे हैं। उनमें से एक कल भात की गाड़ी और भैंसें लेकर राक्षस के पास चला जाय।"

ग्रामीण ने अपने कानों पर दोनों हाथ रख लिये मानों कुंती ने जो कहा उसे सुनना भी पाप हो।

"देवी, आपकी बात को मैं सुन भी नहीं सकता, उसे मानना तो दूर। अपनी रक्षा करने के लिए आपके पुत्र के बलिदान की बात सोचना भी पाप है।"

कुंती ने बड़ी कठिनाई से ग्रामीण को शांत किया, फिर उसको समझाने लगीं। गर्व से मुस्कराकर बोलीं, "आप मेरे पुत्रों को नहीं जानते। मैं खास तौर से अपने मंझले पुत्र के बारे में सोच रही थी। मैं भी उसको उतना ही प्यार करती हूं जितना आप अपने बेटे को। लेकिन राक्षसों से लड़ने का उसे खूब अभ्यास है। उसका भी डील-डोल राक्षसों जैसा ही है और चाल तो हवा की तरह तेज है। मेरी बात मानिए, मेरे बेटे को बकासुर के पास जाने दीजिए।"

यह कह कर कुंती अपने कमरे में वापस चली गयीं। उन्होंने अपने पुत्रों को बकासुर के बारे में बताया और कहा कि वह उनमें से एक को राक्षस के पास

भेजने का वायदा कर आयी हैं। भीम ने हंसकर कहा, ''मैं जाऊंगा मां। मैं ही इस काम के लिए ठीक हूं। पक्का समझो।''

दूसरे दिन भीम ने बकासुर का भोजन जुटाया और खुशी-खुशी जंगल की ओर चल पड़ा जहां राक्षस रहता था। बकासुर अपने घर से देख रहा था। गाड़ीवान की ऊंचाई, उसके विशाल शरीर, उसकी बलिष्ठ भुजाओं और चौड़ी छाती को देखकर उसने संतोष से सिर हिलाया — ''हां, आज खाने में मजा आयेगा।'' लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी भौंहें तन गयीं। भैंसें कहां हैं?

अगले ही क्षण उसने भीम को जो करते देखा उससे उसका आश्चर्य क्रोध में बदल गया। भीम ने जमीन पर केले का बड़ा-सा पत्ता बिछाया और आराम से बैठ गया। फिर बहुत बड़े बेलचे से गाड़ी में से खाना निकाल-निकाल कर पत्तल पर रखने लगा। राक्षस के देखते-देखते भात, तरकारी और दूसरी चीजें तेजी से भीम के अथाह सुरंग जैसे पेट में पहुंचने लगीं। क्रोध के मारे राक्षस पागल-सा हो गया। बड़े जोरों से गर्जना करता वह आगे बढ़ा और भीम से कुछ ही दूरी पर खड़ा हो गया। भीम ने बक के पेड़ के तनों जैसी टांगों की ओर देखा और फिर पत्तल में भात परोसने लगा। बकासुर और निकट आया।

''कैसे मूर्ख हो तुम जो बक के क्रोध का शिकार बनना चाहते हो। क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हें मेरा आहार बनने के लिए भेजा गया है ? और मेरी भैंसें कहां हैं ?''

भीम ने थोड़ा भात और मसालेदार तरकारी का एक बड़ा ग्रास मुंह में भरा और उसे निगलकर कहा,'' भैंसें नहीं हैं।''

बक ने गरज कर पूछा, ''क्या मतलब ?''

भीम ने ठंडे स्वर में समझाया, ''गांव में मवेशियों की कमी है। हमें अपनी गऊओं और भैंसों की जरूरत है। गांव के बच्चों को दूध चाहिए न।''

क्रोध से कांपते हुए बकासुर भीम की ओर झपटा। भीम हिला-डुला नहीं।

राक्षस भीम के पीछे खड़ा हो गया और उसको उठाना चाहा। उसने अपनी सारी ताकत लगा दी लेकिन वह पांडव योद्धा टस से मस नहीं हुआ। तब बक ने अपनी दोनों विशाल बाहें उठायीं और भीम की गर्दन पर प्रहार किया।

"अरे, जाओ भी यहां से," भीम ने ऐसे कहा मानों चोट से उसका केवल एक बाल इधर-उधर हो गया हो। "तुम मुझे बेकार तंग कर रहे हो और इस बढ़िया खाने का मजा बिगाड़ रहे हो।"

आश्चर्य और क्रोध के मारे बकासुर जड़ होकर खड़ा रहा। उसकी आंखों के सामने भीम ने गाड़ी का सारा भोजन चट कर दिया, फिर डकार ली और हाथ धोने लगा।

फिर कुश्ती के लिए तैयार होकर भीम ने कहा, "अगर तुम तैयार हो तो आओ दो-दो हाथ हो जायें।"

बकासुर तन कर भीम की ओर लपका। भीम ने बिजली की तरह कूद कर राक्षस को धराशायी कर दिया और उसके पेट पर चढ़ बैठा। बक करवट लेकर भीम के नीचे से निकल गया, और जड़ समेत एक पेड़ को उखाड़ कर भीम की ओर झपटा। भीम ने भी अपने दाहिने हाथ से एक पेड़ उखाड़ लिया और उसको सामने करके बक के वार को रोकने की चेष्टा करने लगा। दोनों योद्धा एक-दूसरे को पेड़ फेंक-फेंक कर मारने लगे। उनकी लड़ाई से घबराकर चिड़ियां डर के मारे इधर-उधर उड़ती रहीं फिर दूर जाकर बैठ गयीं और लड़ाई देखने लगीं। पर्वत

जैसे उन यौद्धाओं की टक्करों से मीलों तक धरती कांपने लगी मानों भूचाल आ गया हो।

जल्दी ही बकासुर थकान के मारे हांफने लगा। अब वह किसी तरह इस दैत्य से बचकर भाग जाना चाहता था जो उसकी जान लेने के लिए आया था। लेकिन भीम ने उसको जाने नहीं दिया। जब बकासुर भाग जाने की कोशिश करता तो

भीम उसको पीछे खींचकर उस पर लातें और घूंसे बरसाता। अंत में भीम ने इतने जोरों का वार किया कि बकासुर चारों खाने चित्त हो गया। उसकी पीठ पर घुटना रखकर भीम ने उसके सिर और टांगों को इतनी जोर से पीछे मोड़ा कि उसकी रीढ़ की हड्डियां तड़तड़ा कर टूट गयीं। दर्द के मारे बकासुर इतने जोरों से गरजा कि जंगल के शेर और बाघ तक डर के मारे अपनी-अपनी मांदों में जा छिपे। भयंकर गर्जना के साथ बकासुर मर गया।

जब बकासुर के घर वालों और नातेदारों ने मृत्यु से पहले उसकी चीख सुनी तो वे भागे-भागे उस जगह आ पहुंचे और भीम के चरणों पर गिरकर क्षमा-याचना करने लगे। भीम का चेहरा कठोर था, लेकिन उसकी बात न्याय-संगत थी। वह बोला, "तुम लोग इस जंगल में एक ही शर्त पर रह सकते हो कि आज से तुम नरभक्षक नहीं रहोगे। नरमांस खाना छोड़ दोगे। अगर यह शर्त स्वीकार नहीं तो एकचक्र के किसी भी आदमी को हाथ लगाने से पहले
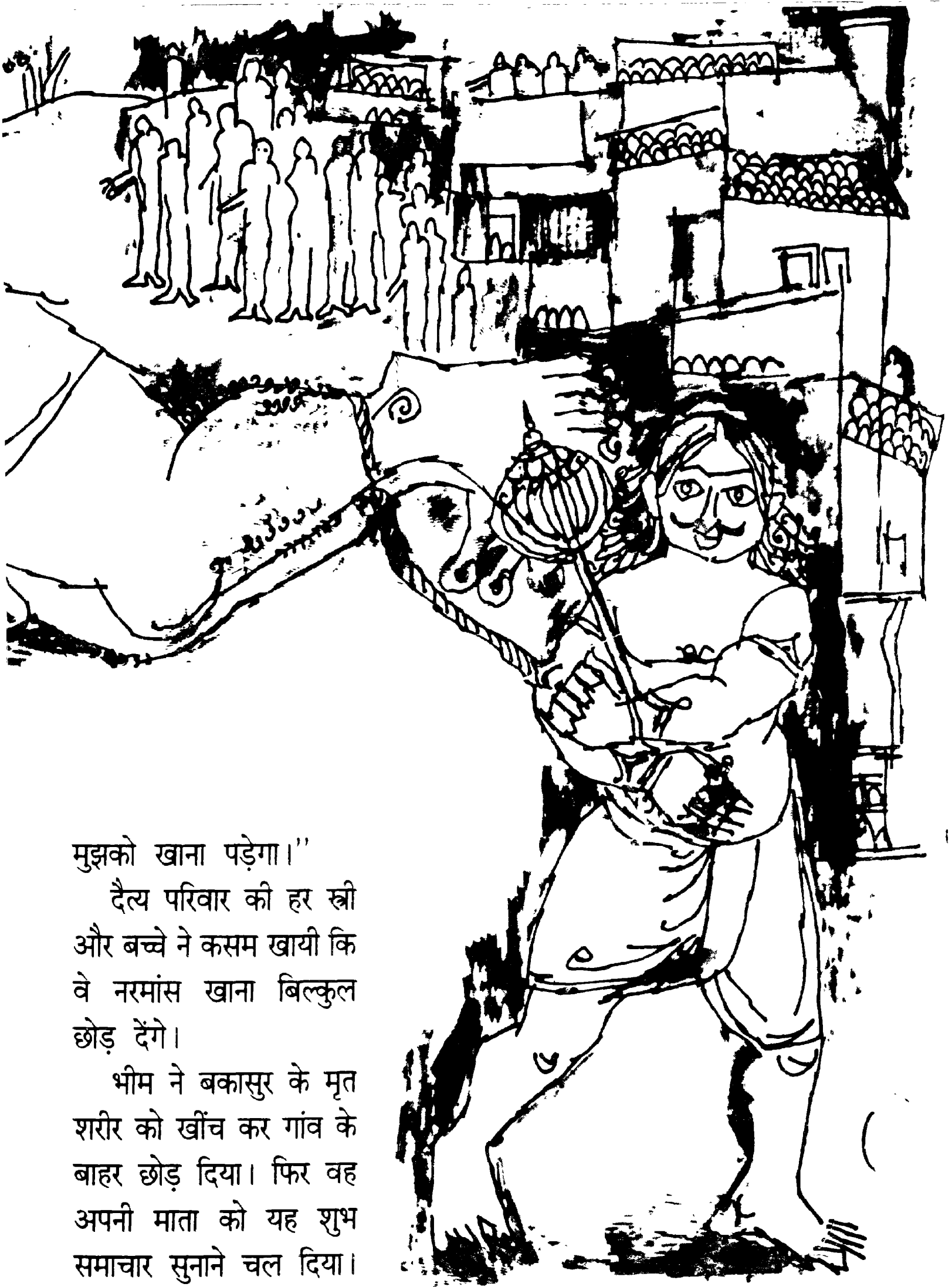
मुझको खाना पड़ेगा।"

दैत्य परिवार की हर स्त्री और बच्चे ने कसम खायी कि वे नरमांस खाना बिल्कुल छोड़ देंगे।

भीम ने बकासुर के मृत शरीर को खींच कर गांव के बाहर छोड़ दिया। फिर वह अपनी माता को यह शुभ समाचार सुनाने चल दिया।

खांडव वन में आग

बात तब की है जब कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो चुका था और युधिष्ठिर को हस्तिनापुर का राजा बना दिया था। एक दिन कृष्ण और अर्जुन यमुना तट पर बैठे शाम की ठंडी-ठंडी हवा का आनंद ले रहे थे। युद्ध के खत्म होने के बाद, जीवन शांतिपूर्ण हो गया था — यहां तक कि उन्हें अब यह शांति कभी-कभी खलने लगती थी। उन्हें जोखिम और रोमांच पसंद था।

कृष्ण और अर्जुन दोनों बैठे नये मंत्रियों और राज्य के अधिकारियों के बारे में बातचीत कर रहे थे कि उन्होंने देखा कि एक लंबा आदमी लड़खड़ाता हुआ उनकी ओर चला आ रहा है। वह रौबदार लेकिन बीमार लगता था। पास आकर उसने बड़े दयनीय स्वर में कहा, "मुझे भोजन चाहिए। मैं भूख के मारे मरा जा रहा हूं।"

कृष्ण और अर्जुन दोनों ने लगभग एक साथ उत्तर दिया, "हम अभी आपके भोजन की व्यवस्था कर देते हैं । आप जी भर कर खाइए। जब तक भोजन

मंगवाएं कृपा करके बैठ जाइए और आराम कीजिए।" उन दिनों लोग अतिथियों का बहुत सत्कार करते थे।

लेकिन उस व्यक्ति ने सिर हिलाकर कहा, "मुझे साधारण भोजन नहीं चाहिए। कुरकुरा, मजेदार भोजन चाहिए जिसके एक ग्रास से मुंह भर जाय। आपने मुझे नहीं पहचाना? मैं अग्नि हूं।"

अब दोनों ने निकट आकर ध्यान से देखा। सचमुच वह तो अग्नि ही थे, लेकिन इतना बदल गये थे कि पहचान में ही नहीं आये। उन दोनों ने आदरपूर्वक अग्नि को नमस्कार किया, और उन्हें आराम से बिठाकर उनका कुशल-मंगल पूछने लगे। क्या वह बीमार हैं? कौन-सी खास वस्तु खाना चाहते हैं? वस्तु चाहे जितनी दुर्लभ हो उसको पाना चाहे जितना कठिन हो, वह मंगवायी जायेगी और उनके आदेश के अनुसार उसे पकाया जायेगा।

अग्नि ने क्षीण स्वर में कहा, "कुछ पकाने की आवश्यकता नहीं। मेरा खास भोजन तो तैयार है।"

"कहां है? क्या है वह?"

"वह है खांडव वन।"

"आपका मतलब है कि वह खांडव वन में है?"

"नहीं, खांडव वन ही वह वस्तु है।"

कृष्ण ने आश्चर्य से कहा, "तो क्या आप वन को ही खाना चाहते हैं?"

"हां, मैं इसका कारण बताऊंगा," अग्नि ने कहा। "आपने राजा श्वेतकि का नाम सुना है?"

"हां-हां", अर्जुन ने कहा "वही न जिन्होंने बहुत

से दान-पुण्य, यज्ञ और बलि आदि कर के बड़ा यश कमाया है?"

"हां," अग्नि ने उदास होकर कहा। "वह एक दिन अवश्य स्वर्ग जायेगा। लेकिन जब तक वह धरती पर है, एक भी ब्राह्मण उससे वास्ता नहीं रखेगा।"

"आख़िर क्यों?," अर्जुन ने पूछा।

"उनके यज्ञ आदि करवाते-करवाते वे लगभग अंधे हो गये हैं। प्रति दिन धुएं के सामने बैठकर सारा दिन कोई वेद-मंत्र पढ़ता रहे तो और क्या होगा, बोलिए? जब देश की सारी लकड़ियों को हवन-कुंड में झोंका जा चुका तो मुझे कच्ची हरी टहनियां खिलायी जाने लगीं। कच्ची लकड़ियों का धुआं कैसा होता है, आप जानते हैं। बस, बेचारे ब्राह्मणों की आंखों और गलों में इतना धुआं भर गया कि वे लगभग अंधे-से हो गये। यहां तक कि राजा को हार कर अपने पड़ोसी राज्यों से ब्राह्मण-पंडित बुलवाने पड़े।"

अर्जुन ने कृष्ण की ओर इस डर से नहीं देखा कि कहीं ऐसा न हो कि आंखें मिलते ही वे दोनों ठठा कर हंस पड़ें। उन्होंने हंसी रोककर पूछा, "तो क्या यह यज्ञ आदि बहुत समय से चल रहे हैं?"

"हां, बरसों से," अग्नि ने उत्तर दिया। "एक यज्ञ समाप्त होता तो राजा श्वेतकि दूसरा आरंभ कर देते। उन्होंने वह सब बलि चढ़ाया है जो हर क्षत्रिय राजा का धर्म समझा जाता है। फिर एक और यज्ञ किया, जिसके पूरा होने पर हजारों ब्राह्मणों को दान दिया गया। इसके बाद एक और यज्ञ हुआ जिसका उद्देश्य था स्त्रियों और बच्चों का कल्याण।"

कृष्ण ने गंभीरता से कहा, "यह तो किसी धर्मपरायण राजा के लिए भी कुछ ज्यादा ही है।"

"इससे मेरी दशा क्या हो गयी, देखिए" अग्नि ने ठंडी सांस भरकर कहा। "जब मैं आया तो आप मुझे पहचान भी नहीं सके। बरसों से इन यज्ञों में मुझे बाल्टी भर-भरकर सिर्फ देसी घी पिलाया गया है। जरा सोचिए तो, बरसों केवल

घी पीकर रहना कैसा होगा ! मेरा रंग देखिए। वह चमक-दमक, वह आभा कहा गयी, जिसे देखकर स्त्रियों को भी ईर्ष्या होती थी। मैं स्वास्थ्यप्रद, पौष्टिक भोजन के लिए मर रहा हूं। मुझमें बिल्कुल शक्ति नहीं रह गयी है।''

''क्या आप इसीलिए खांडव वन को खाना चाहते हैं?''

''हां, एक कारण यह भी है। खांडव वन में वह सभी कुछ है जिसके लिए मैं तड़प रहा हूं — सूखे पेड़ जो मुंह में खूब कुरकुरे लगेंगे, हरे रसभरे पौधे, झाड़ियां और लताएं। अपनी अनेक जिह्वाओं में से एक से मैं उनका रस चाटूंगा और जानवर जिनका मांस मेरे होठों को अमृत के सामन स्वादिष्ट लगेगा।''

''आपने कहा था कि यह एक कारण है। तो क्या कोई और कारण भी है?'' अर्जुन ने अग्नि की बात काटकर पूछा।

''हां,'' अग्नि को भोजन की बात से बड़ी तृप्ति मिल रही थी। अर्जुन के पूछने पर बड़ी कठिनाई से उस ओर से अपना ध्यान हटाया और बोले, ''खांडव वन स्वर्ग के देवता इंद्र का गढ़ बन गया है। मेरी समझ में नहीं आता कि जब इंद्र के पास इतनी शक्ति है, अनगिनत देवता उसके अधीन हैं, तो उनको अपनी सुरक्षा के बारे में सदा डर क्यों लगा रहता है?'' धरती और स्वर्ग में वह हमेशा इसी का पता लगाया करते हैं कि कहीं कोई विद्रोही तो नहीं है, या कोई गुप्त रूप से उनकी गद्दी छीनने की कोशिश में तो नहीं लगा है?'' उन्हें जगह-जगह दुश्मन दिखायी देते हैं।''

''तो क्या इंद्र के मित्र और गुप्तचर खांडव वन में रहते हैं?''

''और जानते हैं उनका नेता कौन है? तक्षक।''

क्या?'' अर्जुन ने आश्चर्य से कहा। ''तो सर्पराज इतने गिर गये हैं कि वे गुप्तचर और भेदिये का काम करने लगे हैं?''

अग्नि ने कहा, ''वे स्वयं नहीं करते। मेरा उनसे कोई झगड़ा नहीं। उनका रास्ता अलग है और मेरा अलग। लेकिन वन में उनकी जो सर्प सेना है उसमें
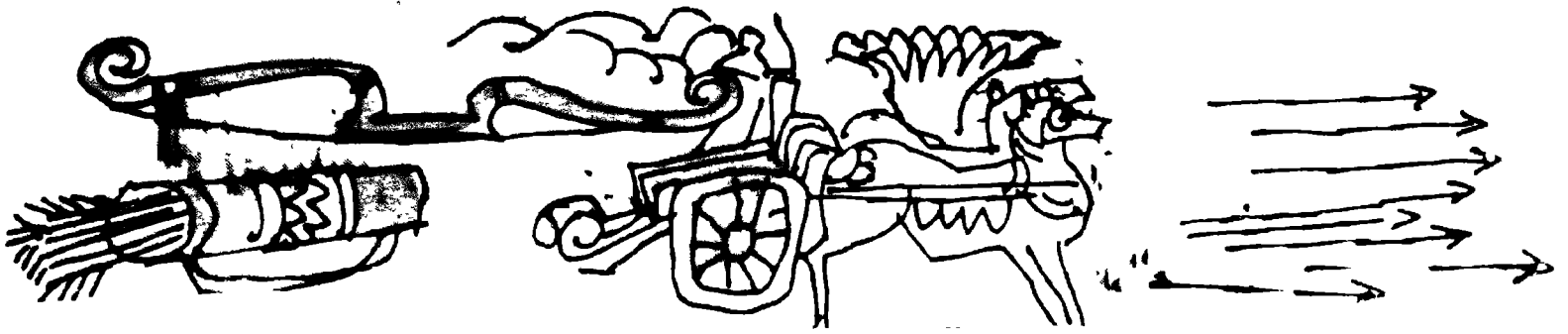
उनकी तरह न्याय-बुद्धि तो है नहीं। इसके अलावा वहां पिशाचों, दैत्यों, असुरों और दुष्ट आत्माओं का अजीब जमघट है। वहां मनुष्य-भक्षक हैं, दैत्य-दानव हैं, प्रेत हैं, बैताल हैं, विचित्र पक्षी हैं और भयानक जंतु हैं। जंगल में इस प्रकार के अधम जमा होते रहे, इनकी संख्या बढ़ती गयी तो जंगल का क्षेत्र भी फैलता गया और आसपास के गांव मानों सिकुड़ कर छोटे होते गये। सूर्यास्त के बाद लोग बाहर निकलना नहीं चाहते क्योंकि वे डरते हैं कि जंगली पशु उनके बच्चों को उठा ले जायेंगे। रात भर जंगल से इतनी डरावनी आवाजें आती रहती हैं कि लोग सो नहीं पाते, रात भर डर से पड़े कांपते रहते हैं। कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। जंगल को नष्ट करना होगा।''

अर्जुन ने शंका व्यक्त की, ''क्या आप उस विशाल वन को अकेले ही खत्म कर सकेंगे?''

अग्नि ने चटखारे लेते हुए कहा, ''हां, लेकिन मुझको सहायता चाहिए। मैंने सात बार अकेले उसे चट करने की कोशिश की लेकिन श्रीगणेश भी नहीं कर पाया। स्वर्ग के देवताओं की सहायता से इंद्र स्वयं वन की रक्षा करते हैं। हताश होकर मैं ब्रह्मा के पास गया तो उन्होंने कहा, ''जाओ, कृष्ण और अर्जुन से कहो कि वे तुम्हारी सहायता करें। बोलिए, आप करेंगे मेरी सहायता?''

कृष्ण इस प्रतीक्षा में रहे कि अर्जुन ही निर्णय करें। खांडव वन उनके राज्य में था।
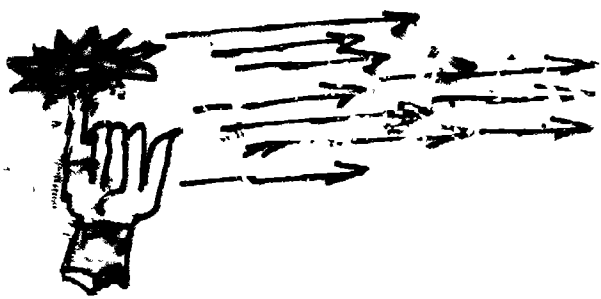
कुछ सोचकर अर्जुन ने कहा, ''हम आपकी सहायता करेंगे। लेकिन हमें शस्त्र चाहिएं। जैसे, मुझे अपने इस धनुष से भारी एक धनुष चाहिएं और बहुत सारे वाण। इस बोझ को उठाने के लिए एक रथ भी चाहिए। रथ को खींचनेवाले घोड़े बिल्कुल सफेद हों। उनकी चाल हवा की तरह तेज हो और जब रथ के पहिए दौड़ें तो मीलों तक बादल उड़ा दें। कृष्ण को भी कुछ हथियारों की आवश्यकता होगी। अगर हमें आप यह सब कुछ दे सकें तो हम खांडव वन को भस्म करने में आपकी सहायता कर सकेंगे।''

अग्नि ने कहा, ''कृष्ण को तो केवल चक्र चाहिए। वह मैं स्वयं उन्हें दे दूंगा। और अर्जुन, आपको जो शस्त्र चाहिएं मैं उन्हें जल-देवता वरुण से दिलवा दूंगा।''

कृष्ण को चक्र मिल गया। वह इस चक्र को इस प्रकार चला सकते थे कि शत्रु का सिर धड़ से अलग करके वह फिर उनके पास लौट आता।

अर्जुन को वरुण से जो धनुष मिला वह कमाल का था। इसके तरकस में तीर खत्म ही नहीं होते थे। एक तीर निकाला जाता तो दूसरा उसकी जगह आ जाता। सृष्टि को बनाने वाले विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया एक रथ भी उनको मिला। उसके घोड़े सफेद थे और उसकी साज-सज्जा सुनहरी। वे आकाश में दौड़ते तो लगता कि बिजली कौंध रही है। इसके अलावा वरुण ने अर्जुन को एक बल्लम भी दिया जो फेंके जाने पर बादल की तरह गरजता था।

अर्जुन ने अपना कवच पहना, तलवार कमर में बांधी, हाथों पर नरम चमड़े के दस्ताने चढ़ाये, धनुष उठाया और उसकी कमान खींच कर देखा कि कहीं कोई दोष तो नहीं है। तब हथियारों से भली प्रकार लैस होकर अग्नि से बोले, ''हम तैयार हैं। कृपा कर के जाइए और वन को घेर लीजिए। तब कृष्ण और मैं

अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जायेंगे। मैं प्रतिज्ञा करता हूं, खांडव वन अवश्य आपका आहार बनेगा।''

फुंफकारते हुए अग्नि देवता खांडव वन के चारों ओर घूमने लगे। कृष्ण और अर्जुन आकाश में उठ गये और घने हरे जंगल के ऊपर अपनी-अपनी जगह तैयार खड़े हो गये।

वन में रहने वाले, तरह-तरह के रंग-रूप और आकारवाले जीवों को आग की गंध मिल गयी थी और वे बचाव का रास्ता ढूंढने लगे थे। किसी के भारी सिर और पंजेनुमा पांव थे तो किसी की एक ही आंख थी, और किसी के

कटावदार पंख और लंबे-लंबे नाखून। कुछ तो डर के मारे भागे तो सीधे आग की लपटों में जा घुसे। मशाल की तरह जलते हुए वे आग बुझाने के लिए घास पर लोटने लगे। लेकिन अग्नि की लपलपाती जीभ ने, जो जंगल में फैलती चली जा रही थी, उन्हें अपनी लपेट में ले लिया और वे भयानक आर्तनाद करते हुए मारे गये। विचित्र, भारी काले पक्षी उड़ कर आकाश में बादलों की तरह छा गये, लेकिन कृष्ण और अर्जुन के बाणों ने उन्हें फिर नीचे आग की लपटों में गिरा दिया जहां देखते ही देखते वे जलकर राख हो गये। जंगल के अंदर बहुत से जानवर भय से फैली आंखों के पास आती आग की लपटों को निहार रहे थे। सांपों ने घास मे रेंग कर निकल भागने की कोशिश की, लेकिन अग्नि ने फुर्ती से घास को जला दिया और साथ ही उन्हें भी खत्म कर दिया।

इस अग्निकांड के कारण गर्मी इतनी बढ़ गयी कि जंगल में जो झील और तालाब थे उनका पानी उबलने लगा। मछलियां मरकर पानी पर तैरने लगीं।

जले मांस की दुर्गंध सारे जंगल में फैल गयी। आसपास के गांवों में रहनेवाले लोग शोर, दुर्गंध और उस भयंकर दृश्य से बचने के लिए घर छोड़ कर भाग खड़े हुए।

स्वर्ग के देवता लोग तो कुछ देर तक भयभीत होकर यह कांड देखते रहे, फिर दल बांध कर अपने राजा इंद्र के पास गये। समाचार सुन कर इंद्र के क्रोध का ठिकाना न रहा।

एक देवता ने कहा, "महाराज, आपको शायद स्मरण हो कि तक्षक खांडव में नहीं है। वह अभी कुरुक्षेत्र से वापस नहीं आया। लेकिन अगर वह होता भी तो खांडव को बचाना बहुत कठिन था।"

"क्यों कठिन था?" इंद्र ने पूछा।

"क्योंकि अग्नि अकेला नहीं है। कृष्ण और अर्जुन उनकी सहायता कर रहे हैं। इस समय उनका रथ जलते हुए जंगल के ऊपर खड़ा है।"

यह सुन कर इंद्र क्षण भर चुप रहे। कृष्ण और अर्जुन प्रसिद्ध योद्धा थे और अजेय माने जाते थे। लेकिन देवताओं के राजा इंद्र को इतना अहंकार था कि उन्होंने प्रतिज्ञा की कि खांडव वन की रक्षा भी करेंगे और साथ ही कृष्ण और अर्जुन को परास्त कर सारे विश्व के सबसे बड़े योद्धा कहलाएंगे।

यह निर्णय करने के बाद इंद्र तैयारी में लग गये। उन्होंने देवताओं को आज्ञा दी कि सारे अग्नि वन को मीलों तक गहरे बादलों से ढक दें जो उनका संकेत पाते ही पानी बरसाने लगें।

जब वन के ऊपर बादल जमा हो गये और सूरज ढंक गया तो कृष्ण और अर्जुन वन के ऊपर की ओर, लेकिन बादलों के नीचे से,

धड़ाधड़ बाण चलाने लगे। ये बाण आड़े-आड़े एक दूसरे से सटे हुए इस प्रकार बिछ गये मानो बादलों के नीचे मंडप तान दिया गया हो। इतनी पक्की छत बन गयी कि पानी बरसा तो बूंद भर भी अंदर नहीं गया बल्कि छत पर से ढुलक-ढुलक कर जंगल के किनारों पर जमा होने लगा। धीर-धीरे इतना पानी जमा हो गया कि अच्छी-खासी नदी बन गयी। आग से बचकर भागने की कोशिश में बहुत से जीव नदी में गिर कर मर गये।

अंत में अपने ऐरावत पर सवार होकर स्वयं इंद्र, मृत्यु के देवता यमराज, धन के देवता कुबेर, वायु और अन्य देवताओं को साथ लेकर लड़ने आये। कृष्ण और अर्जुन ने
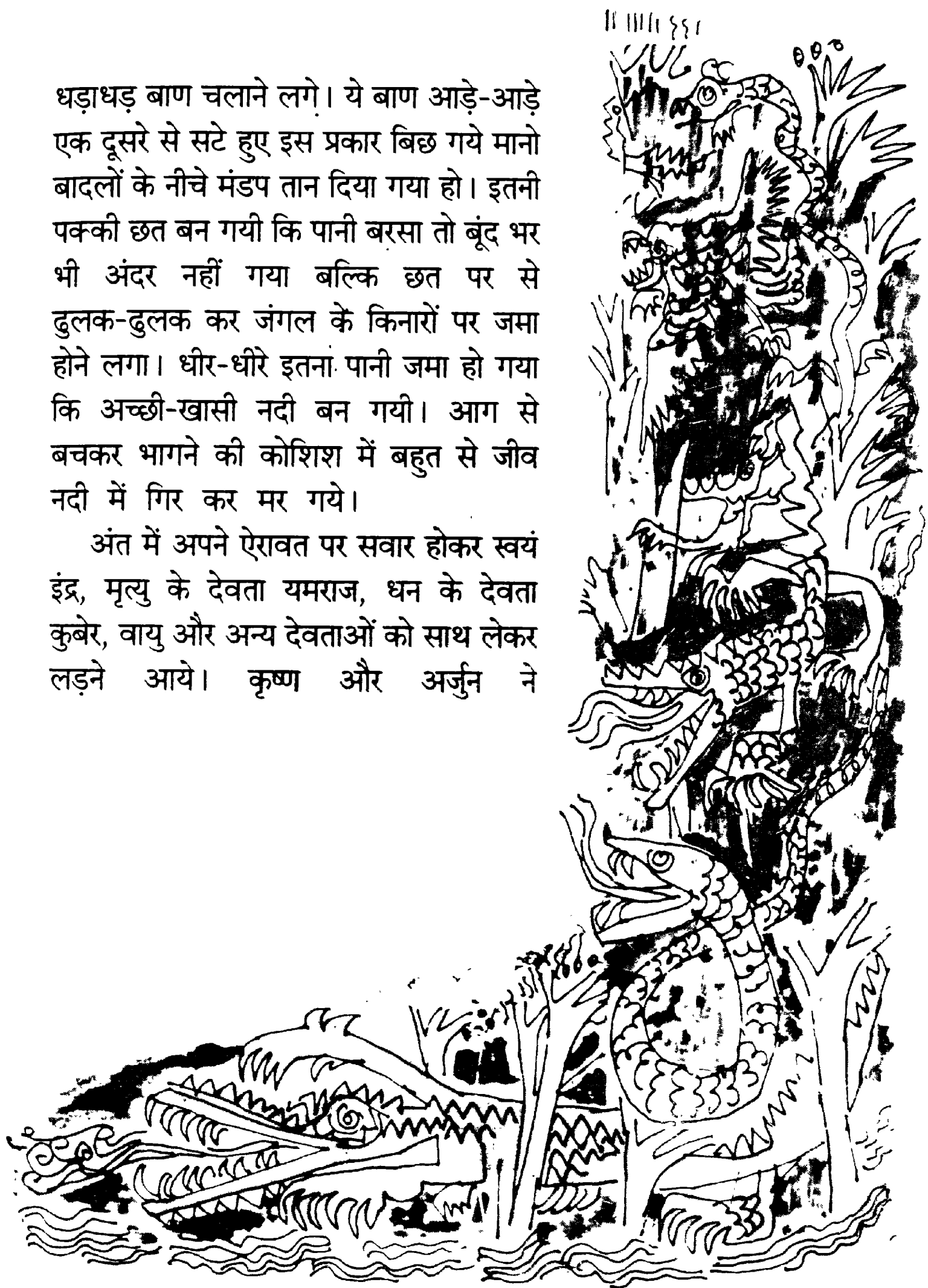
सबको खदेड़ दिया। यहां तक कि इंद्र के पैर भी उखड़ गये। लेकिन उन्होंने युद्ध से भागकर अपनी रक्षा नहीं की। उन्हें अपना वचन पूरा करना था और किसी प्रकार तक्षक की पत्नी और पुत्र की रक्षा करनी थी। जब इंद्र ने तक्षक से उन तमाम विचित्र जीव-जंतुओं को संभालने को कहा था जिन्हें खांडव वन में भर दिया गया था तो यह वचन दिया था कि उसके स्त्री-पुत्र की रक्षा करेंगे।

जब अपने शानदार वाहन पर इंद्र जंगल के ऊपर आये तो तक्षक की पत्नी ने उन्हें देख लिया और तुरंत लपटों के बीच से उड़कर उनके पास जाने लगी। उसकी सुंदर सुनहरी खाल ताप में झुलस गयी थी। अर्जुन ने उस सुंदर नागिन को
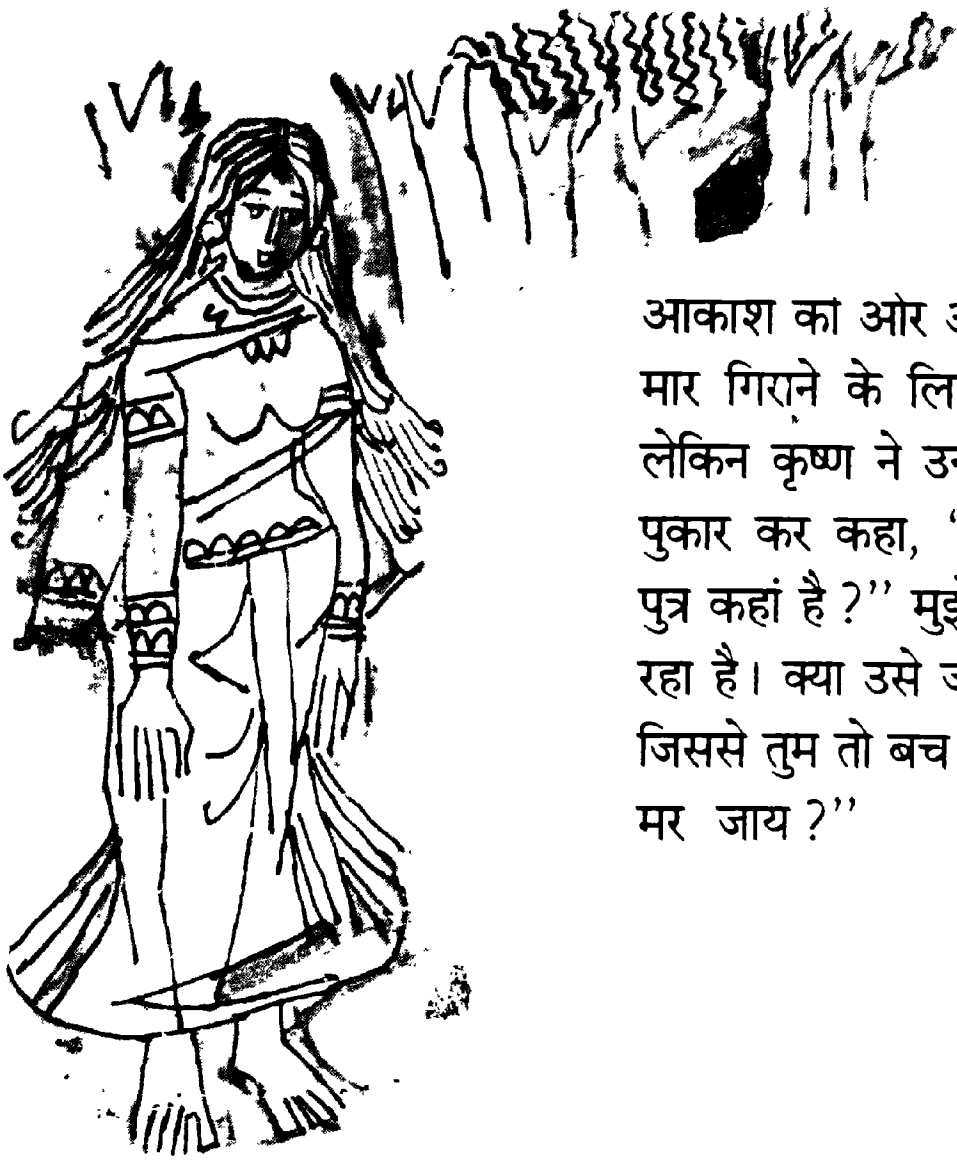
आकाश का ओर आते देखा तो उसे तीर से मार गिराने के लिए निशाना साधने लगे। लेकिन कृष्ण ने उन्हें रोका और नागिन को पुकार कर कहा, "तक्षक की पत्नी तुम्हारा पुत्र कहां है?" मुझे तो वह दिखायी नहीं दे रहा है। क्या उसे जंगल में छोड़े जा रही हो जिससे तुम तो बच जाओ और वह जल कर मर जाय?"

तक्षक की पत्नी ने कहा, "मेरा पुत्र मेरे पेट में है। मैंने आग से बचाने के लिए उसको निगल लिया। मुझे मारे बिना तुम उसको नहीं पा सकते।"

यह सुनते ही अर्जुन ने अपना धनुष झुका लिया।

खांडव वन पूरे पंद्रह दिन तक जलता रहा। अग्नि ने अपनी अनेक जलती हुई जीभों से जी भर कर मांस, खून, और चर्बी का भक्षण किया। और जब थक गये और तृप्त हो गये तो खाना बंद कर दिया।

चारों ओर मीलों तक फैला और घनी आबादीवाला खांडव वन' अब केवल काली राख का अनंत विस्तार था।

जुपिटर ऑफसेट वर्क्स, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित